Volume 2, Issue 2. April-June 2016 ISSN-2395-7468

THE Equanimist

A peer reviewed journal

Volume Editor
Dr. Anurag Dave

The Equanimist

... A peer reviewed journal

Chief Editorial Board

Dr. Manoj.Kr.Rai (Assistant Professor. M.G.A.H.V.)
Dr.Virendra.P.Yadav (Assistant Professor. M.G.A.H.V.)
Dr. Nisheeth Rai (Volume Editor) (Assistant Professor. M.G.A.H.V.)
Dr. Roopesh.K.Singh(Assistant Professor. M.G.A.H.V.)
Mr. Ravi S. Singh (Assistant Professor. M.G.A.H.V.)

Editorial Board

Prof. S. N. Chaudhary (Barkatullah University, Bhopal)
Prof. R. N. Lohkar (University of Allahabad)
Prof. U.S. Rai (University of Allahabad)
Prof. D.P.Singh (TISS,Mumbai)
Prof. V.C.Pande. (University of Allahabad)
Prof. Anand Kumar (J.N.U.)
Prof. Nisha Srivastava (University of Allahabad)
Prof. Siddarth Singh (Banaras Hindu University)
Prof. Anurag Dave (Banaras Hindu University)
Dr. H. S. Verma (Lucknow)
Dr. Vijay Kumar (An.S.I. Jagdalpur)
Dr. Pradeep Kr. Singh (University of Allahabad)
Dr. Shailendra.K.Mishra (University of Allahabad)
Dr. Ehsaan Hasan (Banaras Hindu University)
Mr. Dheerendra Rai (Banaras Hindu University)

Assistant Editorial Board

Rajeev Ranjan (Res. Sch. B.H.U.)
Abhisekh Kr. Rai (Res. Sch. B.H.U.)
Shiv Kumar (Res. Sch. M.G.A.H.V.)
Shiv Gopal (Res. Sch. M.G.A.H.V.)
Sanjay Dwivedi (Res. Sch. University of Allahabad)
Ajay Kumar Singh (Res. Sch. I.G.N.O.U.)
Abhisekh Tripathi (Res. Sch. M.G.A.H.V.)
Shreekant Jaiswal (Res. Sch. M.G.A.H.V.)
Vijay.K. Kanaujiya (Res. Sch. M.G.A.H.V.)

Managerial Board

Mr. K.K.Tripathi (Managing Editor) (M.G.A.H.V.)
Mr. Uma Shankar (M.G.A.H.V.)
Mr. Manoj Kumar (M.G.A.H.V.)
Mr. Rajesh Agarkar (M.G.A.H.V.)
Mr. Arvind Kumar (M.G.A.H.V.)

The Equanimist

Volume 2, Issue 2. April-June 2016

S.NO.	Content	Pg. No.
	Editor's Note	
	Research Articles	
1	Landscapes of Change: The *Bir Babas* in Banaras Hindu University **Banibrata Mahanta**	1-8
2	Crisis of Agriculture in Maharashtra: Regional Dimension **Khursheed Ahmad Khan &Rakesh Raman Girish C Pande**	9-21
3	Water Management in India: Current Status and Role of Communication **Sudarshan Yadav**	22-31
4	Girl's Education and Empowerment as issues of pivotal concern by Malviyaji and Key Challenges **Neha Pandey**	32-40
5	A More Traditional View to Digital Preservation **Aditya Tripathi**	41-45
6	Pilgrimages, Religion and Domestic Tourism: Study of Varanasi **Shyju P J**	46-56
7	Writing Research Proposal **Sisir Basu**	57-62
8	The Environmental Appraisal of OOH Advertising Industry in India **Anurag Dave**	63-77
9	Strategic Leadership and Principles of Subordination from Panchatantra **Mahendra Singh, Shilpi Raj & Rajkiran Prabhakar**	78-87
10	Jakari: Life-Songs of Haryanvi Women **Devender Kumar**	88-97
	शोध पत्र	
11	काशी हिंदू विश्वविद्यालय के शताब्दी वर्ष पर "हिंदी विभाग के सप्तऋषियों का पुण्य स्मरण" **महेंद्र नाथ राय**	98-104
12	भारत की आर्थिक नीति और दलितों की स्थिति (तुलनात्मक अध्ययन) **विकास कुमार एवं एस. राधाकृष्णन्**	105-109

शोध आलेख

13	महामना का गो-पालन चिंतन **दिनेश चंद्र राय**	110-114
14	बाज़ार की भाषा और भाषा का बाज़ारीकरण (हिंदी : विकास, विमर्श और प्रतिमानीकरण) **प्रभाकर सिंह**	115-126
15	भोजपुरी का जीवट संघर्ष : बोली से भाषा की ओर **धीरेंद्र कुमार राय**	127-134
16	कैफ़ी, कैफियत और 'कैफियात' **एहसान हसन**	135-140

Iiknd h;

प्रिय पाठक,

19वीं सदी के उत्तरार्ध तथा 20वीं सदी के पूर्वाद्ध में जब भारत अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ-साथ वैचारिक, सांस्कृतिक और धार्मिक अस्तित्त्व के लिए संघर्षरत था, पं. मदन मोहन मालवीय जी राष्ट्रीयता के इस पुनर्जागरण काल के अग्रिम पंक्ति के नेता थे। उनका संपूर्ण जीवन राष्ट्र को समर्पित था। उन्होनें केवल देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष तक ही स्वयं को सीमित नहीं रखा, बल्कि वे देश में वैचारिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक विमर्श को भी एक नई दिशा देना चाहते थे ताकि स्वतंत्र राष्ट्र अपनी मूल सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना को पहचानते हुए अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त कर सके और साथ ही समय के साथ कदम ताल मिलाते हुए राष्ट्र प्रगति के नये आयाम को छू सके। महामना का यह दर्शन महज विचार और बौद्धिक विमर्श तक ही सीमित नहीं रहा। उन्होंने अनेक संस्थाओं का निर्माण कर इस दर्शन को कर्म के क्षेत्र में उतारने का भी सफल प्रयास किया । उनके इन्हीं सद्प्रयासों का सुंदरतम् स्वरूप है 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय'।

The Equanimist is the person who possesses the quality of Equanimity. Equanimity is, "the quality of having an even mind". As an English word, it has been used in the context of fairness, or weighing things in the balance, as if it were synonymous with "equity", a word often offered as a substitute for it.

The word equity, however, has an altogether different Latin root, *aequitas*, meaning "reasonableness". Equanimity has a Latin counterpart as a root word, *aequanimitas* which has its own roots in Latin: *aequus* meaning "even" and *animus*, meaning "soul, mind". In Latin, soul and mind are one word with one and the same meaning. In Latin, *aequanimitas* refers to a state of the mind and soul, a balanced state of peace, clarity, health, wisdom and insight.

काशी हिंदू विश्वविद्यालय पंडित मदन मोहन मालवीय जी के विचार, चिंतन, व्यक्तित्व और दर्शन का मूर्तिमान विग्रह है। काशी हिंदू विश्वविद्यालय अपनी स्थापना के शताब्दी वर्ष को मना रहा है। सौ वर्षों की सुदीर्घ यात्रा में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के आकार और स्वरूप में काफी परिवर्तन आया है। एक परिसर के भीतर कला, विज्ञान, अभियांत्रिकी, आयुर्वेद, आधुनिक चिकित्सा और कृषि सभी विषयों के अध्ययन की स्थली काशी हिंदू विश्वविद्यालय 'सर्व विद्या की राजधानी' है। मालवीय जी के कर कमलों से रोपित यह पौधा आज एक विशाल वटवृक्ष की भांति ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में सहस्त्र नवयुवकों को ज्ञान के मार्ग पर प्रशस्त कर रहा है। देश में उच्च शिक्षा के केंद्रों में यह विश्वविद्यालय अग्रणी स्थान रखता है। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य जो इस विश्वविद्यालय को देश के अन्य विश्वविद्यालयों से अलग बनता है वह है मालवीय जी

का दर्शन। जिसमें यहां से शिक्षित छात्रों से यह कामना की जाती है की उनकी सोच आधुनिक और वैश्विक हो किंतु उनकी जड़े देश की संस्कृति और दर्शन पर टिकी हों। विगत सौ वर्षों से विश्वविद्यालय निरंतर इस दिशा में कार्यरत है।

'The Equanimist' जर्नल का यह अंक काशी हिंदू विश्वविद्यालय को समर्पित है। प्रस्तुत अंक में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के आचार्यगण एवं शिक्षाविदों के लेख एवं शोध-पत्रों को सम्मलित किया गया है।

डॉ. बानिब्रत महंता ने अपने लेख 'Landscapes of Change: The *Bir Babas* in Banaras Hindu University' में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के परिसर के भीतर बने विभिन्न बीर बाबा के मंदिरों की व्याख्या उनसे जुड़ी जनभावनाओं और समय के साथ उनके स्वरूप में आए परिवर्तन के आधार पर की है। लेखक ने विमर्श के दौरान विश्वविद्यालय के विशाल परिसर के निर्माण से विस्थापित हुए आम लोगों के भावनात्मक एवं सांस्कृतिक कष्ट की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है। जिसकी क्षतिपूर्ति संभव नहीं है।

खुर्शीद अहमद खां तथा प्रो. राकेश रमण के शोध पत्र 'Crisis of Agriculture in Maharashtra: Regional Dimension' में महाराष्ट्र में कृषि की समस्याओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है और इस हेतु सरकार को उचित कदम उठाने की वकालत की गई है।

श्री सुदर्शन यादव के आलेख 'Water Management in India: Current Status and Role of Communication' के अंतर्गत जल संकट तथा जल प्रबंधन की महती आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। वाराणसी पर अध्ययन के आधार पर लेखक का मत है जल प्रबंधन के प्राचीन तरीकों को पुनर्जीवित करना अत्यंत आवश्यक है।

डॉ. नेहा पांडेय के आलेख 'Girl's Education and Empowerment as issues of pivotal concern by Malviya Ji and Key Challenges' में मालवीयजी के विचारों के अनुरूप बालिकाओं के शिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में क्षेत्र अध्ययन तकनीक से बालिका शिक्षा के विस्तार में संचार के महत्त्व को रेखांकित किया गया है।

डॉ. आदित्य त्रिपाठी के शोध पत्र 'A More Traditional View to Digital Preservation' में ग्रंथों तथा दस्तावेज़ों के संरक्षण हेतु प्राचीन एवं आधुनिक डिजिटल तकनीक की समानांतर विवेचना की गई है। प्रस्तुत आलेख में डिजिटल संरक्षण को परंपरागत संरक्षण तकनीक का ही हिस्सा बताया गया है किंतु उसके उपकरण और प्रणाली भिन्न हैं।

डॉ. पी. जे. शैजू के लेख 'PILGRIMAGES, RELIGION AND DOMESTIC TOURISM: STUDY OF VARANASI' में वाराणसी पर केस स्टडी के माध्यम से धार्मिक और तीर्थ पर्यटन की व्यख्या की गई है। लेखक का मानना है की धार्मिक पर्यटन बहुलतावादी समाज के विकास को बढ़ावा देता है।

प्रो. शिशिर बसु के आलेख 'Writing Research Proposal' में विश्वविद्यालय का महत्त्वपूर्ण कार्य ज्ञान के प्रसार के साथ ज्ञान के सृजन को भी माना गया है और इस हेतु बेहतर शोध प्रस्ताव कैसे तैयार किया जाए इसकी विवेचना की गई है।

डॉ. अनुराग दवे के आलेख 'The Environmental Appraisal of OOH Advertising Industry in India' में घर से बाहर विज्ञापन के बढ़ते क्षेत्र को रेखांकित किया गया है और 'SWOT' विश्लेषण पद्धति के द्वारा भारत में इस उद्योग के विकास की संभावना का मूल्यांकन किया गया है।

श्री महेंद्र सिंह, कु. शिल्पी राय तथा डॉ. राजकिरण के लेख 'Strategic Leadership and Principles of Subordination from Panchatantra' में प्राचीन भारतीय ग्रंथ पंचतंत्र के माध्यम से प्रबंधन के विभिन्न सिद्धांतों की विवेचना की गई है।

डॉ. देवेंद्र के अलेख 'Jakari: Life-Songs of Haryanvi Women' में लोक गीतों में किस प्रकार सामाजिक जीवन परिलक्षित होता है की व्याख्या की गई है। लेख में हरियाणवी लोक गीतों जकरी के माध्यम से समाज और उसके मनोविज्ञान की विवेचना की गई है।

कला संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय के पूर्व प्रमुख एवं हिंदी विभाग में पूर्व आचार्य प्रो. महेंद्र नाथ राय के लेख काशी हिंदू विश्वविद्यालय के शताब्दी वर्ष पर "हिंदी विभाग के सप्तऋषियों का पुण्य स्मरण" में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में यशस्वी आचार्यों की सुदीर्घ परंपरा की व्याख्या की गई है। लेख में हिंदी भाषा विषय में रचनाकर्म तथा अनुसंधान में विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग की भूमिका की विस्तृत चर्चा की गई है।

डॉ. विकास कुमार एवं एस. राधाकृष्णन् ने अपने लेख "भारत की आर्थिक नीति और दलितों की स्थिति" में इस प्रस्थापना पर बल दिया है कि नियोजित एवं बंद अर्थव्यवस्था दलितों के शोषण का आधार रही है। लेखक ने डॉ. अंबेडकर के विचारों के संदर्भ में उदारीकरण की नीतियों की व्याख्या करने का प्रयास किया है। नई आर्थिक नीतियों का दलितों पर प्रभाव के विमर्श में लेखक नई आर्थिक नीति के पक्ष में नज़र आते हैं।

प्रो. दिनेश चंद्र राय (पशु पालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग) ने अपने लेख "महामना का गो-पालन चिंतन" में गो-पालन पर मालवीय जी के विचार के साथ-साथ गो-पालन की धार्मिक, सामाजिक और औषधीय महत्त्व की वैज्ञानिक व्याख्या की है।

डॉ. प्रभाकर सिंह के आलेख "बाज़ार की भाषा और भाषा के बाज़ारीकरण" में भाषा पर और विशेष रूप में हिंदी भाषा पर बाजार के बढ़ते प्रभाव की विवेचना की गई है। लेखक ने ऐतिहासिक विवेचना के आधार पर जनपदीय बोलियों के मध्य हिंदी के भाषा के रूप में उत्कर्ष को उसके व्यापार, वाणिज्य और

विनिमय की क्षमता से जोड़ा है। साथ ही उन्होंने भूमंडलीकरण के पश्चात उत्तर उदारवादी युग में हिंदी के बदलते स्वरूप के लिए बाजारवादी शक्तियों को जिम्मेदार बताया है।

श्री धीरेंद्र राय अपने लेख में भोजपुरी को भाषा के रूप में आठवीं अनुसूची में शामिल करने की मांग को विभिन्न मापदंडों पर तोलते हैं। उनका मानना है कि यह धारणा निर्मूल है कि हिंदी क्षेत्र से जुड़ी विभन्न बोलियों को भाषा का रूप प्रदान करने पर हिंदी का स्तर कमज़ोर पड़ जाएगा। लेखक का मानना है कि हिंदी की असली ताकत यही बोलियां हैं जो उसे निरंतर समृद्ध करती रही हैं।

डॉ. एहसान हसन ने अपने लेख कैफ़ी, कैफियत और 'कैफियात' में कैफ़ी आज़मी को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए उनके जीवन दर्शन पर गज़लों और शेरों के माध्यम से प्रकाश डाला है।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के सौ वर्षों को समर्पित 'The Equanimist' का यह अंक ज्ञान और विज्ञान के विभिन्न विषयों को अपने में समेटे हुए है। मालवीय जी के श्रीचरणों में शोध पत्रिका के विशिष्ट अंक के अर्पण से बेहतर विश्वविद्यालय के शताब्दी वर्ष को मानाने का कोई और तरीका नहीं हो सकता।

Dr. Anurag Dave
(Volume Editor)

The responsibility for the content and the opinions expressed and provided in the Research papers and Research articles published in this issue of the journal are exclusively of the author(s) concerned. The publisher/editor is not responsible for errors in the contents or any consequences arising from the use of information contained in it. The opinions expressed in the research papers/articles in this journal do not necessarily represent the views of the publisher/editor of the journal. Its Chief Editors/ editors/Assistant editors and Managing Editor are not responsible for any of the content provided/ published in the journals.

Landscapes of Change: The *Bir Babas* in Banaras Hindu University

Banibrata Mahanta[1]

I

From the indomitable spirit and vision of its founder to its growth and development in course of hundred years of its existence, the narrative of Banaras Hindu University is an enthralling one. Building upon the legacy of Pandit Madan Mohan Malaviya, succeeding generations have all contributed to the growth and development of the University. Over time, Banaras Hindu University has come to be characterized by the diversity of disciplines and courses that are offered on a single campus, which has also become one of its significant attributes.

While these are heartening developments, they have come at a price. The increasing number of students, courses and disciplines has led to the persistent need for more infrastructure. This in turn has led to incursions into the vision of the campus as envisaged by the founder of the university. Considerable thought had gone into the conception and designing of the University and the harmony of the overall architectural plan[1]. One cannot help but observe that more often than not, indiscriminate infrastructural development in subsequent times has not adhered to initial ideas underlying the planning of individual buildings, the location of the buildings within the larger plan of the university, as well as the role of unconstructed and unobstructed open spaces in it. The harmony envisaged at the outset has thus been disrupted to a certain extent.

This paper, however, does not intend to focus on later developments and their discordance with the initial architectural planning. The paper focuses on how numerous sites of religious, cultural and social significance like the groves, wells, lakes/ponds and shrines that dotted the land that was acquired to set up the Banaras Hindu University – and which would have, earlier in time, been the centers around which the lives of the people who inhabited the place were structured – have been altered/damaged, or have disappeared in the course of its establishment and development. This, it is argued, results from the absence of any strategy or blueprint for their management or conservation.

There are many relations that people share with the land that they inhabit, and these form a pattern of existence which gives meaning and order to their lives. Even today, the succeeding generations of the people who were relocated to areas adjoining the campus when the University was established regularly come to these sites (or whatever is left of them, in whichever form) on random as well as special

[1] Associate Professor, Department of English, Banaras Hindu University, Varanasi
bmahantaa@gmail.com

occasions. The shrines of the *bir babas* within the precincts of the University are a case in point. The paper juxtaposes the traditional ideas regarding *bir babas* and their shrines (based on studies which record how they were conceived and comprehended in popular imagination) and current realities of how and where they are located on the campus, thus establishing that what they are today is at a considerable remove from what they were when the University was founded and probably before that. It also advocates the need for a plan to manage and conserve such sites as repositories of marginalized stories and experiences that are in danger of being elided by history.

These shrines are important for two reasons. One, these sites exemplify power relations in terms of the dichotomy between studies of cultural activities and the studies of political developments. The term cultural activities refers to the varied aspects of the lives of landholders who lived in these areas; political activities is taken to mean the larger national struggle against the British, of which the nationalist activism of Pandit Madan Mohan Malaviya and the setting up of Banaras Hindu University were parts. Earlier historiography privileged the traditional political narrative and lives of "great men" over the everyday cultural, thus overlooking the role of ordinary people in it. The *bir babas* are symbolic of these marginalized stories and of the lives and experiences of landholders who lived here before the establishment of Banaras Hindu University, whose stories we are in danger of forgetting. Secondly, and accruing from the first, these sites become important instruments in the analysis of identity and change across time, offering a nuanced local context to the setting up of the University.

II

Scattered throughout the city of Varanasi and across the countryside and beyond are the shrines of numerous *birs* or *bir babas*. Who are the *bir babas* and what is their origin and significance in the lives of the people? Diane M. Coccari, who has worked extensively on them[2], notes that there aren't many available studies on *bir babas* as they are "[f]requently dismissed by the scholarly and the lay community alike as subjects of minor importance" (131). Scholars of Indian History and History of Art have given detailed interpretations about the prevalence of *yaksha puja* as an integral aspect of folk religion which persisted across the ages and continued to influence the dominant religious practices and itself underwent constant transformation. Vasudeva Sharan Agrawala, in his insightful discussion of the genealogy of *bir* worship, its linkages to folk traditions and to Jainism, Buddhism and Islam, hypothesizes:

> What we often see in religions of our country is that ancient gods and goddesses continue to exist in one form or the other and the people continue to believe in them and worship them. What saves them from complete extinction

> are the shrines of these gods and goddesses and fairs associated with them. Certain aspects of belief and worship may change with time, but these two factors can help us recognize them. *Yaksha* worship is also not dead. It is alive in the form of worship of the *bir-brahms*. (Agrawala 132, translation mine)

He further goes on to state that there are four shrines dedicated to *yaksha* worship in Banaras Hindu University, which are now referred to as the shrines of the *bir babas*.

The etymological root of the term *bir* is the Sanskrit word *vir*, which means "hero". They refer either to powerful ghosts and/or heroic martyrs who laid down their lives in the defense of family, friends, caste, village or religion. These tragic elements associated with the *bir* pertain to their heroism in laying down their lives or their being duped or tricked by the enemy or by fate. This is why they are deified in course of time. Their untimely death is the source of their power as deities. It is commonly believed that the *birs* were exceptional in terms of physical and martial prowess and human qualities, and are commonly believed to belong to the lower castes. The characteristic features that define them are thus "a human past; an untimely, heroic, sacrificial or otherwise extraordinary end to life; a continued presence at the site of the shrine; and a localized and a particularized power to effect or influence certain exigencies in the lives of worshippers. (Coccari "Deified Dead" 251). The memorial to the *birs* are usually in the form of a " primordial looking clay mound (pin d , stūp, thūhā) set upon a raised platform (caurā, *cautarā*, *cabūtarā*)" (Coccari "Deified Dead" 256). Alternatively, they could be "imageless enclosures", "small carved figures in bas-relief" or "images reconstituted from recovered, broken sculptural fragments" (Coccari, "Protection and Identity" 132). These *birs* are variously looked on as village guardians, champions of the powerless, or having more specialized functions.

The campus of the Banaras Hindu University is home to several shrines known as *bir baba*, *mai* and *gram devata* shrines. In the early days of the University, these shrines dotted the campus and were located amidst dense clusters of trees and shrubs. The people in the adjoining villages visited these shrines and carried out ritual worship most often in the form of ritual offering of food on specific days of the year and also on auspicious occasions such as births, marriages, building of a new house etc. On account of the dense foliage it was not easy to access the shrines after sunset. Myriad birds, reptiles and a variety of small animals also lived around the shrines. Anthills, snake holes and rabbit burrows were commonly found. Large populations of Bengal monitor lizards (*goh*), porcupines, foxes, jackals and peacocks were also found around these shrines. The people who worshipped at these shrines conceived the deities as wrathful and took care to appease them with appropriate food

and worship rituals failing which misfortune might strike the errant family or the entire village. The dense flora and fauna added to the mysticism of the shrines and deities.

My survey of *bir babas* in the University led me to five present locations[3]. I started with *Karmanbir* who is mentioned by both Agrawala (136-138) and Coccari ("Protection and Identity" 138). What I found was very different from what they had described[4]. Instead of a pointed aniconic mound on a raised platform in a sugarcane field next to Vishwakarma Hostel, it is now a complex of three small temples. One is dedicated to Hanuman and one to Rama and Sita. The third temple bears a plaque identifying it as dedicated to *Karmanbir*, but the mound is now transformed into a *shivalinga*, identifiable by the paraphernalia of Shiva worship. This and all other shrines – of *gramdevata Akela baba* adjoining the Amphitheatre ground on the road between the Faculty of Arts and Institute of Science (which contains a small carved figure of the baba), *Jangambir baba* in Hyderabad Colony (which has an aniconic mound), *Daitrabir baba* located within the campus of a residential quarter in Aurobindo Colony (which does not have either a mound or an icon), or *Gullabir baba* situated next to the NCC office (which has a mask-like face reminiscent of Lord Kalbhairava) – bear modern structures which have evidently been constructed in recent times, have frames which support temple bells, and are strewn with sculptures, images and pictures of various Hindu gods and goddesses, both inside and outside the shrines. The dense foliage and animal population of the earlier shrines are absent, the former structures having been overlaid with cement and tiles. In some cases a *yoni* has been designed around the mound making it appear like a *shivalinga*. Over a period of time therefore, the *bir babas* and their shrines have changed in character and have lost their distinctiveness and exemplify changed realities. They now coexist as temples to Shiva and various other gods. However, it is pertinent to mention that inspite of the changes that have occurred over time, the lives of the resettled population in neighbouring villages is still influenced and structured by these shrines, albeit in modified ways. They still come to these shrines for regular *darshan* and also on special religious and personal occasions like festivals and weddings. While many are still aware of the stories of the *bir babas* and carry them in their consciousnesses, their rituals and practices are determined by the iconic paraphernalia that presents itself before them in the shrines. Regular bhajans and kitans are organized during festivals, especially in the complex of temples that were once the shrines of *Karmanbir* and *Gullabir baba.*

III

The Banaras Hindu University was built by acquiring the villages of "Nagwa Darbar, Bhagwanpur Darbar, Bhagwanpur, Naria, Dhananjaypur, Khijarahi, Jangampur, Susuahi, Seer Goverdhanpur and Chhittupur" which comprised 1215.53 acres, besides the 44.51 acres which had been initially acquired for the Foundation-

Stone Laying Ceremony (Dar and Somaskandan 405). It involved large scale dispossession of landholders and their relocation. Dar and Somaskandan, in their official account of the history of Banaras University, further note:

> In the land comprising about 1200 acres … there were about seven thousand trees, one hundred pacca wells, twenty *kutcha* wells, forty *pacca* houses and 860 *kutcha* houses. A few temples and Dharmashalas with gardens attached were also there, mostly on the *Panchakroshi Road*. About one thousand acres of land were under cultivation. (406)

The dispossessed occupants whose habitations dotted the University, it was planned, would gradually be resettled in a model village which would be built by the Hindu University Society by acquiring suitable land in the southward direction. While more than half the people, it was observed, were wage-earners, a significant population was agrarian in nature. Babu Bhagavan Das was of the opinion that "a good many of these [would] easily change to wage earning occupation of their cousins and relatives and be provided with ample work for years to come on the structures of the University (qtd. in Dar and Somaskandan 328)[6].

The acquisition of land was a difficult process, and "all the land acquired for the new BHU campus was through land acquisition orders after the university officials were unable to purchase the land through private contract" (Renold 74)[7]. While adequate attention was paid to the resettlement of those who were affected by the acquisition of land for the university and their compensation in material terms was also adequate[8], there is no mention of how these changes would affect the lives of people. It was assumed that they would gradually be integrated into new ways of life that would emerge as the University started functioning, or else they would go the way of their "cousins and relatives", transitioning from an agrarian existence to "wage earning" ways. It presupposed that what the people would leave behind would gradually be replaced by their adaptation to newer ways of life.

However, traditional holdings cannot merely be looked at in terms of occupation of lands, as they inhere not just the physical survival of the people who inhabit them but a complex of social and cultural realities and associations which shape the lives of the people, often for generations. The acquisition of land for the establishment of Banaras Hindu University (or acquisition of any land in general) can thus be seen as the unsettling of a people's communal life with repercussions for their physical as well as social and cultural equilibrium. It is assumed that compensation for displacement will automatically lead to adjustment and resettlement, and overlooks the diverse aspects of relations between people and their cultures and environment. Loss of kinship structures, the loss of control over living conditions to which one is accustomed and the loss of the social, cultural and spiritual realities

which structure life over a protracted period are aspects which cannot be compensated.

This is not in any way to pick a quarrel with the way the people who held the lands were resettled/compensated or to belittle, in any insignificant way, the majestic vision of Pandit Madan Mohan Malaviya. His traditional Hindu upbringing coupled with Western education, the two bulwarks which were the foundational ideas behind the setting up of the University, led to the establishment of Banaras Hindu University, which is of considerable importance in the shaping of modern India and Indian nationalism, and is an area of study to which sufficient attention has not been paid. What the paper suggests is that in the course of the hundred years of its existence, similarly scant attention has been paid to the tangible and intangible cultural heritage of the land which was acquired, leading to the loss of many important aspects of life and culture which could have added to the diversity of the institution. Regrettably, over the hundred years that have passed, the lack of an integrative vision that could connect the past to the present and the future has occasioned changes that have created a rupture in this continuity. What is ironical is that while an individual action like that of Pandit Madan Mohan Malaviya's provided the impetus for the construction of a new community by emphasizing the importance of the traditional and the nationalist affiliations of its members, a different world of tradition, contained in the lived culture of the displaced people, which could have added to the sense of community and identity formation got excluded in this process.

A hundred years on, the existence/presence of the University has altered and transformed the milieu which had existed prior to it. The shrines of the *bir babas* discussed are only one manifestation of this process. Cultural change is inexorable and any attempt to arrest this change is an exercise in futility. However, the centenary year of the University is as much a time for introspection as it is for looking forward. The paper thus attempts to argue a case for institutional intervention into this dynamics, so that earlier forms of cultural ordering are not completely obliterated by what comes later.

Notes:

1. A detailed description of the architectural planning and layout of the University on the lines of details of individual buildings and their overall harmony is to be found in Rana P. B. Singh's article "Mahamana Malaviya's Vision of Banaras Hindu University: A Frame of Archetypal Architecture and Cosmic Plan." The topic is also discussed in *A Hindu Education: Early Years of the Banaras Hindu University* by Leah Renold (148-157).
2. The discussions on the *bir babas* and their shrines are based on initial work done in the area by Vasudeva Sharan Agrawala in *Pracheen Bharatiya Lokdharm*, and subsequent work done by Diane M. Coccari in her PhD dissertation "The Bir Babas of Banaras: An Analysis of a Folk Deity in North

Indian Hinduism" (submitted to the University of Wisconsin, Madison, 1986), and Gyan Prakash's *Bonded Histories: Genealogies of Labor Servitude in Colonial India*.

3. While Agrawala mentions four sites, field surveys and reprographic and oral documentation done by Partha Sarathi Nandi, Shailesh Pratap Singh, Saurav Kumar and Dharmendra Yadav, research scholars in the Department of English, Banaras Hindu University (to all of whom I owe a debt of gratitude) led me to five sites. In the absence of any extant documentation, I have relied on these oral testimonies in this preliminary survey.
4. This description is based on the details narrated by Agrawala (136, 138) and a photograph of the shrine used by Coccari ("Protection and Identity" 138).
5. Some significant differences between the them are mentioned by Agrawala (138). While *shivalingas* are usually short and squat, *thuhas* are longer and pointed. Again, *shivalingas* are usually accompanied by images of other gods and goddesses, while a *bir* is usually alone.
6. Babu Bhagavan Das's observations are part of an article he published in response to the objections raised by some people that "the proposed site was outside the limits of the Holy land of Kashi and that the idea of locating the University outside Banaras would be most repugnant to the great orthodox section of the Hindus" (qtd. in Dar and Somaskandan 317).
7. A detailed description of the entire process whereby land was acquired by the University is to be found in Renold (71-79).
8. This inference is based on the record that throughout the process of land acquisition, there was not a single instance of any case being lodged in court. This could also be in part due to the generosity of the land holders, big and small, who cooperated for a larger cause (Dar and Somaskandan 407). This fact is contested by Renold, who states that there were protests from many quarters, till the imposition of the land acquisition order forced landholders to give up their land to the University (73).

References:

1. Agrawala, Vasudeva. Sharan. (1964). *Pracheen Bharatiya Lokdharm.* Ahmedabad: Gyanodaya Trust.
2. Coccari, Diane M. (1995). Protection and Identity: Banaras's Bīr Babas as Neighbourhood Guardian Deities. *Culture and Power in Banaras: Communit., Performance and Environment 1800-1980*. (Ed), Sandria B. Frietag. New Delhi: OUP. pp. 130-146.
3. Coccari, Diane. M. (1990). The Bir Babas of Banaras and the Deified Dead. *Criminal Gods and Demon Devotees: Essays on the Guardians of Popular Hinduism*. (Ed), Alf Hiltebeitel. New Delhi: Manohar. pp. 251-269.

4. Dar, S. L., & Somaskandan, S. (1966). *History of the Banaras Hindu University*. 2007 rpt. Varanasi: Banaras Hindu University.
5. Prakash, Gyan. (1990). *Bonded Histories: Genealogies of Labor Servitude in Colonial India*. Cambridge: Cambridge University Press.
6. Renold, Leah. (2005). *A Hindu Education: Early Years of the Banaras Hindu University*. New Delhi: OUP.
7. Singh, Rana P. B. (2015). Mahamana Malaviya's Vision of Banaras Hindu University: A Frame of Archetypal Architecture and Cosmic Plan. *Mahamana and BHU*. special issue of *Kashi Journal of Social Sciences* 5.(1-2), pp. 301-315.

ISSN : 2395-7468

Crisis of Agriculture in Maharashtra: Regional Dimension

Khursheed Ahmad Khan[1]&Rakesh Raman[2]

Maharashtra is one of the highly progressive, globalized and developed states of India in terms of growth of services and manufacturing sectors, urbanization, agriculture production, etc. The state achieved significant growth in agriculture sector during the green revolution period and adopted the principles and ideals of neo-liberalism as the nation adopted economic reforms. It was hoped at that time that the reforms will accelerate the growth of Maharashtra's economy in general and shall give a boost to agriculture (that remains main stay for over 50% of the people of the state). The optimism was not entirely unfounded in the initial years as along with the manufacturing and services sectors of the state, agriculture too made some progress but unfortunately the tempo could not be maintained and today the agricultural sector in the state is in shambles, the farmers are in grief and distress and the state agriculture has become the cynosure of public attention for all wrong reasons.The agrarian economy of the state, despite the rich resources, is trapped in the morass of backwardness. The growth of agriculture in the state is constrained by a number of factors like low levels of public and private investment in the neo-liberal era, structural bottlenecks, uncertain monsoon and frequent crop-failures, institutional weaknesses and lack of appropriate policy environment among others. Over a period of time the problems have intensified. The rising cost of cultivation and price deflation (that is a chief feature of global monopoly capitalism) have caused decline in the the per capita income of the farmers and made agriculture an unviable occupation for them. Farmers' woes and debt have increased and pushed them to the worst form of farmers' crisis- farmers' suicide.

Maharashtra is a huge state consisting of five regions, viz. Greater Mumbai, Western Maharashtra, Marathwada, Konkan and Vidarbha. The regions have widely different natural endowments, infrastructure development, agro-climatic features, cropping pattern, and peculiarities related to agriculture. Since the government and academicians have been primarily attracted by extreme reflection of crisis i.e. farmers' suicide, Vidarbha where the incidence of suicide is very high, has been able to grab the limelight and crisis in other regions of the state has remained rather neglected. It is imperative for us to explain crisis of agriculture from regional and district perspective and see whether in areas of Western Maharashtra and Marathwada where the situation prima-facie does not look grave, things are really satisfactory. It is imperative for us to try and measure the intensity of crisis in different regions of Maharashtra and then see how and why this intensity differs across regions. It is precisely this that this paper attempts to do. It attempts to fulfil

[1]Research Scholar, Dept. of Economics, B.H.U., Varanasi. Email-khursheedak86@gmail.com
[2]Professor, Dept. of Economics, B.H.U., Varanasi. Email- rraman88@gmail.com

two objectives -first, to quantify and measure the extent of crisis of agriculture in Maharashtra and different districts of the state and second, to identify the factors that are responsible for the creation and perpetuation of the crisis.

The paper is organized in four sections. Section-I analyses the agrarian situation of Maharashtra and presents the comparative study across three main regions of Maharashtra. Section-II provides explains district-wise situation of crisis of agriculture in Maharashtra with the help crisis index. Section-III provides some interventions required to put the cart on track.

Section-I Agrarian Situation of Maharashtra

Despite having a reasonable pace of industrialisation, Maharashtra remains a predominantly agricultural economy with low contribution of agriculture to GDP but high dependence of population. The status of agriculture in the state is very poor. The sector is characterized by heavy dependence on monsoon, high percentage of marginal and small land holdings, high population pressure, low productivity and production, high cost of credit and production, and declining profitability of cultivation. We present here some features of the agricultural sector of Maharashtra-

Land Used Pattern in Maharashtra -Land availability and its use are indicative of the importance or otherwise of agriculture and determine the success of technological progress. The pressure of population, economic development, innovatory behaviour and institutional framework determine the pattern of land use of a region at a given time. One interesting fact observed in Maharashtra is land put to non-agriculture use which over a period of 40 years, i.e. 1960-61 to 2000-11 increased at a slower rate, but after the advent of globalization, growth rate increased very fast (see Table-1 pg. 17). This is due to heavy urbanization, industrialization and infrastructural developments and also the tendency of farmers to run away from agriculture as the profitability nosedived.

Due to unviability of agriculture (high cost of production and low return) the farming community does not want to stay with this occupation and tries to shift to other sources of livelihood. This has caused decline in net sown area and increase in fallow land. Low income from cultivation, high cost, land mortgage, insufficient resources, drought like situation and to some extent small land holdings are some of the reasons for the rise in fallow land.

Marginalization of Land Holdings – Increase in number and proportion of marginal and small farmers and fall in average size of operational holding under different category of farmers are distinguishing characteristics of Maharashtra agriculture. Table-2 (see pg. 17) shows that 78.55% of holding in Maharashtra are marginal and small and cover 45.15 percent of operated area. Average size of holding for different farmer groups has witnessed consistent decline. The state agriculture has thus

become '***bottom heavy***. Though literature (Majumdar 1963,Saini, 1971, Sen 1998) also gives argument for an inverse relationship between size of holding and productivity, yet if the criteria is shifted to the per capita production of food and gross income of the farmers family one would unequivocally say that 'more the merrier' dictum holds good for agriculture. Small holdings face challenges relating to access to agricultural resources, liberalization and globalization, market volatility, low bargaining power, and risks and vulnerability, adaptation of climate change, uneven access to technologies and natural resources, unreliable input supplies etc. Land use pattern and nature of landholdings have affected the overall growth process of agriculture in Maharashtra.

Growth Pattern of Agriculture in Maharashtra

The state agriculture has witnessed sliding down in the second phase of reforms. The compound growth rate of production has significantly deteriorated for food in the state recently. Table-3 (See pg. 18) compares crop wise CGR for different phases and clearly indicates that during the green revolution period the agriculture achieved the highest growth for all crops except oilseed. In this period the growth of food grain and cereal was 9.4% and 9.6%, respectively but in the era of globalisation the situation has changed. The growth rate of production especially for wheat, rice, cereal and cotton has declined. A disturbing fact came for bajara and pulses where negative growth rate has been recorded for this period.

Stagnant or rather declining yield and very slow increase in agricultural production coupled with high growth rate of population in the state has caused per capita food grain availability in the state to decline. In 1981 per capita food grain availability was 195.04 Kg/Annum but in 2011, this figure was recorded at only 134 Kg/Annum.

Declining Profitability of Production or Unviability of Agriculture -The most important indicator of unviability of agriculture in the state is the gap between the minimum support price (MSP) declared by the government for a particular crop and the cost of cultivation. The profitability of agriculture has declined nationwide and the position of farmers in Maharashtra has worsened. Table-4 (see pg. 18) shows that profit per quintal from cultivation in Maharashtra is negative and it was far below other major states of India.

Due to unviability of agriculture, farmers take loan at a high rate of interest to meet their social obligation. Thus, Indebtedness is the first and important step of the crisis, which occurs before the incidence of suicide.

Indebtedness of Farmers

The unviability of agriculture has resulted in mounting indebtedness of farmers. Poor agricultural income, dependence on money lenders for credit needs and

absence of non-farm avenues of income has together resulted in growing indebtedness of farmers. The NSSO in 2014 found (see table-5 pg. 19) that the incidence of farmers' indebtedness in the country is very high with on an average more than 50% of the farmers in the country having in trap of some type of debt or the other. As far as Maharashtra is concerned, definitely the amount of indebtedness here was found to be far less than the states like Andhra Pradesh and Kerala, but by no means low. Around 58% of the farming households in the state were found to be under loan and the average loan considerably high amongst the farmers with farm size of 4.0 hectares and more. Clearly high loan with frequent failure of crop is creating problem for the framers here.

Farmer's Suicide

The huge burden of indebtedness on farmers is pushing them into distress and ultimately to suicide. Farmers' suicide is an extreme form of manifestation of farmer's distress. The increasing incidence of farmers' suicides is symptomatic of a larger crisis. In the context of Maharashtra, the spate of farmer's suicide has reached at critical level and covered all regions of the state. Although, suicide is considered as a spontaneous act, yet, it is well-thought decision in case of the farmers. Some micro studies help in linking agrarian distress to suicides. (See Table-6 pg. 20)

Farmer's suicide is not only confined in backward regions like Vidarbha and Marathwada, over a period of times the incident of suicide has spread to over all regions of Maharashtra. But the intensity of suicides differs from one region to others. The spate of farmers Suicides is concentrated in the Vidarbha region of the state, especially among cotton growers. During the last few years cotton has emerged as a suicidal crop for farmers of Vidarbha and Marathwada regions. Cotton growers receive low return at high cost of cultivation, which is not sufficient to recover from the burden of indebtedness. Hence, the huge burden of indebtedness leads to incidences of farmers suicides in the state. Especially for small farmers have low capacity to absorb shocks. If agriculture fails due to failure of monsoon or untimely rain or any other natural problem, these farmers who have borrowed money to carry on agricultural activities face loss that they cannot sustain. It forces them to sell their land or take extreme steps like suicide even.

Section-II Region and District wise Explanation of Crisis of Agriculture

In order to understand the reality of the crisis at district level, the present paper has attempted to measure an index of agricultural crisis. It has chosen some indicators of crisis for this purpose. Of the different indicators chosen, some are negatively and some are positively related to crisis. The lists of indicators that have been included in the computation of crisis are mentioned below. Since the units of the indicators vary, they are required to be first normalized before any statistical tool is applied. In the process of normalization goalposts of the indicators have been

selected from within the sample. The normalized value has been calculated as follows:

$$\text{Normalized value (In)} = \frac{\text{Actual value - Minimum value}}{\text{Maximum value - Minimum value}} \qquad (1)$$

For indicators negatively associated with crisis, the equation (1) has been changed to.

$$\text{Normalize valued (In)} = \frac{\text{Maximum value - Actual value}}{\text{Maximum value - Minimum value}} \qquad (2)$$

Finally arithmetic mean has been used for the calculating crisis index.

$$\text{Crisis Index} = \frac{I_{n_1} + I_{n_2} + I_{n_3} + I_{n_4} + I_{n_5}}{5} \qquad (3)$$

Where List of Indicators (1-5) are

	Indicators for Crisis of Agriculture
1	% of net sown area to total cultivable land
2	Cropping Intensity
3	Productivity (Kg/Ha)
4	Per capita food grain production (Kg)
5	Indebtedness of Farmer

The district level data of these indicators have been collected from the latest available statistics, from the Directorate of Economics & Statistics, Planning Department, Government of Maharashtra, Mumbai. For reducing any fluctuation in crisis indicators, the average value of data has been taken. For analysis purposes, two regions of Maharashtra i.e., Konkan and Greater Mumbai have been excluded because they have different type of agrarian relation.

For analysing ground reality of the crisis, district wise crisis index has been computed on the basis of two time periods (TE04 & TE11) and differences of the crisis index has been taken for this purpose. Negative sign of the differences indicates that agrarian economy has improved their position, whereas positive sign indicates that the agrarian economy has come under distress condition.

Table-7(pg. 20) clearly indicates that the western region of the Maharashtra has some advantage in terms of agricultural development as compared to other two regions and has improved its position. Only one district (Kolhapur) of the western region out of 10 districts, has dropped its current position and come under the situation of crisis. On the other hand almost 50 percent districts of the Vidarbha

(Washim, Yavatmal, Wardha, Bhandara, Chandrapur**)** and Marathwada (Latur, Nanded, Parbhani, Hingoli**)** regions are passing through distress condition and the agrarian situation has become worse. The figures painted in the red in the diagram given above shows deterioration between TE 2004 and TE2011. This is indeed a very danger sign for the state.

We have also classified the districts for both TE 2004 and TE 2011 on the basis of their crisis scores. In the process of classification, we have obtained the average value of crisis data and then used equal class interval for further classification. Five categories have been demarcated by dividing the spread of crisis index into equal class intervals. Districts with Crisis index values above 0.603 have been placed in first category which reflect very high crisis zone. Districts with Crisis index values between 0.532 and 0.602 have been put in second category, which relate to high crisis zone. Districts with Crisis index values from 0.461 and 0.531 have been ranked as districts with moderate crisis and have been placed in third category. The districts with index score falling in the range 0.390 and 0.460 have been put in the low crisis performing category, while districts with index score of less than 0.389 have been comprised best performers and placed in the last category. Table -8 (pg 21) ranking of different districts in TE 2004 &TE 2011.

W= Western Maharashtra, M= Marathwada, V= Vidarbha, T=Total

Disparities in development of agriculture in terms of cropping pattern, irrigation facilities, infrastructure, etc. across Marathwada, Vidarbha and Western Maharashtra have been a matter of great concern. The Western Maharashtra has developed, whereas Vidarbha and Marathwada regions have remained backward. Western Maharashtra is more irrigated as compared to rest of the Maharashtra, as a result, the cropping intensity in this region is very high. Animal Husbandry, Dairy, Poultry and Goat Farming are also supporting employment generation activity in agricultural sector. Hence, the farming community in Western region maintains its level of income. During the last few years the income of the farmers of the Western Maharashtra has increased. The political leadership of Western Maharashtra has dominated the state politics as compared to other regions and the successful execution of co-operatives and other financial resources also strengthened the efforts of the farmers in Western Maharashtra.

The problem of farmer's distress is concentrated in the Vidarbha and Marathwada regions of the state. Today, these two regions of Maharashtra have become a hot spot of farmers' suicide. These regions are known as cropping belt of cotton and soyabeen. Cotton, which was once known as 'White Gold' has become a suicide crop in Vidarbha region. Increasing cost of cultivation with declining returns has led to deterioration of the farmer's condition as they are not able to recover the cost of cultivation. Further it has led to indebtedness and increased incidences of

farmer suicides in the state of Maharashtra. Vidarbha, Western part of Vidarbha (Yavatmal, Buldhana, Wardha and Washim) has reported highest incidences of suicides whereas; eastern part of Vidarbha mostly the tribal belt shows relatively less number of cases of suicides. One important study which has been conducted by Deshmukh (2010) in Vidarbha region of Maharashtra, also examines that the Eastern part of Vidarbha comprising of Nagpur, Bhandara, Chandarpur, Gondia, Gadchiroli, known as rice belt is less affected area in comparison to the western part including Wardha, Amaraoti, Akola, Yavatmal, Washim, Buldhana districts which are referred to as cotton belt where large number of cotton growers have committed suicides. Indebtedness of the farmers was considered as the main reason of suicide, followed by the economic downfall. Market imperfection is another big problem of cotton grower farmers.

The study of Mishra (2006) reveals that the failure of the Monopoly Cotton Procurement Scheme and the diminishing role of formal credit institutions in the state are the root cause of present agrarian crisis. He found that the suicide is the complex interplay of multiple factors. The minimum number of risk factors is two and the maximum is nine. The most common factor was indebtedness (86%) fallowed by fall in economic position with 74%. A recent study undertaken by Mohanty (2005) of Amravati and Yavatmal districts revealed that the suicides in these districts were the results of a complex process of interaction of both historical and contemporary socio-economic forces. The study has observed that lower-and middle-class peasant smallholders find themselves trapped between enhanced inspiration generated by land reform and the ‘reality of neo-liberalism’ reflected in rising debt and declining income. The rain-dependent cotton growing farmers of Vidarbha are faced with declining profitability because of dumping in the global market by the U.S.A., low import tariffs, failure of the monopoly cotton procurement scheme, and withdrawal of supporting state investment and subsidies.

The preliminary signs of a brewing crisis are visible in Vidarbha region, but during the last couple of years the tentacles of crisis have spread in other regions of Maharashtra i.e., Marathwada and Western region. The crisis of agriculture in the state has reached an acute stage and suicide has become a main manifestation of crisis. If corrective measures are not taken at the earliest, the crisis of agriculture in the state will become out of control in recent future.

Section-III Suggestions and concluding remarks

Crisis in the Agrarian Economy has emerged as a big problem for the state and some of its regions. Last few years a number of steps have been taken to tackle the crisis and government has been claiming that it is making substantial efforts to address crisis issue. However, these measures do not present any serious impact on crisis of agriculture. Any government policies must be focused on minimizing cost of production and optimizing market price. State should intervene to resolve the

problem of sale of agricultural product. The debate on determination of Minimum Support Price should be sorted out friendly with the farmers' groups. Thus, in the fixation of MSP, member of the all farmer and social groups should be involved at micro level and MSP must be calculated at district level because inputs of cultivation are mostly affected by local factors like labour wage, transportation, etc.

During the reform period the price of agricultural product especially for commercial crops (cotton) and its final product has drastically declined and farmers have not been able to receive fair price for their products. Therefore, A Market Risk Mitigation Fund should be established at block as well as district levels to minimize violent fluctuations in product price and financial institutions should protect farmers during period of such fluctuations in market. Especially, in case of cultivation of cotton, there is need for redistribution of gains and allocation of risks among input dealers, output dealers and the farmers and the government must insure that the small and marginal farmers get higher gain at lower risk. There is a need for putting in place appropriate regulatory system.

A large proportion of small and marginal farmers of Vidarbha and Marathwada depend upon unviable agricultural (cultivators and agricultural labourers) activities. There are not many avenues of diversifying sources of income. Thus, they are forced to borrow money at higher rate of interest from institutional and non-institutional sources of loan. Government must create an opportunity of agro based processing unit and promote rural non-farm enterprises not only to support farmers' household for earning supplementary income but also to give some alternative opportunity for small and marginal farmers who depend upon unviable activity.

A summary description of main problems of agriculture in the state of Maharashtra reflects the precarious position it is in. The agrarian economy of the state is at the cross roads as agricultural production and crop yields have declined or stagnated. The per capita production of food grains per annum has fallen. Land, water and soil, the three most critical resources on which state's rural economy is built, have sharply deteriorated over time and created an ecological problem in the environment. The profit margin of the farmers has come down drastically. Farmers are finding it difficult to pay back the loans which they have taken at a high rate of interest and high indebtedness and no ray of hope is pushing them to suicide. There is need for the government to give a fresh look to its policies and understand that agriculture in Maharashtra does not mean a sector contributing relatively small proportion of the GDP, it means a profession that supports about 60% of the population. It thus requires 60% of the weightage and care. Unless the government comes up with more determined efforts, the situation is going to remain grim.

Tables and Figures

Table-1
Land Use pattern in Maharashtra (as % of Total Reporting Area*)

SN	Classification	1960s	1970s	1980s	1990s	2000s
1	Barren & Uncultivated Land	6.09	5.87	5.66	5.48	5.63
2	Non agriculture Use of land	2.96	3.00	3.39	3.99	4.70
3	Culturable Waste Land	2.81	3.07	3.29	3.05	2.99
4	Current Fallow	3.46	2.82	2.80	3.44	4.15
5	Other Fallow	4.27	2.66	2.99	3.56	3.93
6	**Total Fallow**	**7.73**	**5.48**	**5.79**	**7.00**	**8.09**
7	Net sown area	65.79	59.25	59.11	57.75	56.29
8	Area sown More than Once	3.33	3.95	7.07	11.28	15.84

Source: Directorate of Economics & Statistics, Planning Department, Government of Maharashtra, * Average Value

Table-2
Marginalisation of the Holdings

No. of operational Holdings under different Farmer Groups (%)				
Groups	**1995-96**	**2000-01**	**2005-06**	**2010-11**
Marginal	40.05 (10.5)	43.71(13.18)	44.61(14.0)	48.97(16.12)
Small	29.81 (23.17)	29.71(25.5)	30.26(26.23)	29.58(29.03)
Marginal + Small	**69.86 (33.67)**	**73.42 (38.68)**	**74.87(40.23)**	**78.55(45.15)**
Semi-Medium	20.2 (29.54)	18.73 (30.39)	17.87(30.64)	15.76(29.17)
Medium	8.86 (27.35)	7.13(24.28)	6.74(24.42)	5.19(20.2)
Large	1.09 (9.45)	0.72(6.66)	0.51(4.7)	0.5(5.48)
Average size of Holdings (in Hect.)				
Marginal	0.49	0.50	0.46	0.47
Small	1.45	1.42	1.26	1.42
Semi-Medium	2.73	2.69	2.50	2.67
Medium	5.76	5.64	5.28	5.621
Large	16.17	15.38	13.39	15.96
All Size	1.87	1.66	1.46	1.44

Note- Figure in parentheses show Operated Area Covered by the Farmer Group in Percent

Source: Directorate of Economics and Statistics, Ministry of Agriculture, Government of Maharashtra

Table-3

Compound Growth Rate for Major Crops (%)

SN	Crops	1960s	1970s	1980s	1990s	2000s
1	Rice	-0.8	5.2	0.2	2.0	0.7
2	Wheat	2.8	7.9	2	1.9	1.1
3	Bajara	0.6	5.1	3.1	2.7	-0.7
4	Total Cereals	-1.6	9.6	1.7	1.7	1.4
5	Pulses	-3.1	0.8	8.7	3.5	-1.6
6	Total Foodgrain	-1.3	9.4	1.4	1.7	2.4
7	Sugarcane	0.9	0.4	-1.9	0.8	1.7
8	Cotton	-1.4	8.4	3.3	4.7	2.7
9	Oilseed	2.1	-3.4	-4.7	3.7	1.4

Source - Directorate of Economics & Statistics, Planning Department, Government of Maharashtra

Table-4

Profitability of Cultivation for major Food grains (Rs./Quintal) for 2010-11

State	Profitability	State	Profitability	State	Profitability
Gujarat	362.46	Haryana	90.76	Andhra Pradesh	-37.27
Rajasthan	299.85	Uttar Pradesh	**37.36**	West Bengal	-38.17
Bihar	174.99	Karnataka	33.96	**Maharashtra**	**-60.38**
Punjab	166.69	Orissa	17.00	Kerala	**-60.47**
M.P.	166.24	Tamil Nadu	-2.33		

Source: Directorate of Economics and Statistics, Department of Agriculture and cooperation, Ministry of Agriculture, Government of India

Table-5
Average Amount of Outstanding Loan (Rs '00) per Agricultural Household by Size Class of Land Possessed for Major States

State	Average Amount of Outstanding Loan (Rs '00) Per Agri. Hhs belonging to the size class of land possessed (Ha)								Estimated. no. of agri. households having outstanding loan (00)	Proportion of indebted agricultural households (0.0%)
	<0.01	**0.01 to 0.40**	**0.41 to 1.00**	**1.01 to 2.00**	**2.01 to 4.00**	**4.01 to 10.00**	**10.00 +**	**All Classes**		
Andhra Pr.	2409	739	893	1049	1623	3500	2494	1234	33421	92.9
Assam	4	8	24	67	71	173	0	34	5995	17.5
Bihar	73	138	132	341	279	424	1494	163	30156	42.5
Chhattisgarh	0	48	93	79	202	239	0	102	9538	37.2
Gujarat	69	120	247	311	826	1624	1148	381	16743	42.6
Haryana	95	192	737	900	1573	1162	4681	790	6645	42.3
Jharkhand	0	56	46	85	92	200	0	57	6464	28.9
Karnataka	355	778	633	987	1248	2321	3673	972	32775	77.3
Kerala	1690	1592	1944	3467	6070	7505	15726	2136	10908	77.7
Madhya Pr.	91	119	152	270	629	1168	1952	321	27414	45.7
Maharashtra	**102**	**453**	**232**	**455**	**582**	**2071**	**3869**	**547**	**40672**	**57.3**
Odisha	88	167	337	181	326	1302	22281	282	25830	57.5
Punjab	131	246	516	1641	2292	3266	9274	1195	7499	53.2
Rajasthan	1694	334	431	678	1031	1548	1528	705	40055	61.8
Tamil Nadu	377	674	1192	1200	2147	3224	4512	1159	26780	82.5
Telangana	563	578	794	1033	1097	1369	2690	935	22628	89.1
Uttar Pradesh	219	160	218	457	1075	1248	2178	273	79081	43.8
West Bengal	57	146	197	330	329	435	2760	178	32787	51.5
All India*	**311**	**239**	**354**	**548**	**949**	**1827**	**2903**	**470**	**468481**	**51.9**

Source- Key Indicators of Situation of Agricultural Households in India, Ministry of Statistics and Programme Implementation, NSSO, December 2014

Table-6

District wise Farmers Suicides in Maharashtra (2001-2009)

S.N	Regions	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007	2008	2009
1	Western	10	03	05	47	50	306	290	213	118
2	Vidarbha	52	110	161	498	499	1659	1447	1382	670
3	Marathwada	00	09	14	95	58	380	326	131	--
4	State Total	62	122	180	640	607	2345	2063	1726	788

Source: Commissioner Offices

Table-7

District wise Crisis index in Maharashtra

Districts	**Crisis Index**			**Districts**	**Crisis Index**		
	TE11	**TE04**	**Difference between TE11TE04**		**TE11**	**TE04**	**Difference between TE11TE04**
Western Maharashtra				**Marathwada**			
Nasik	0.568	0.657	-0.089	Aurangabad	0.359	0.493	-0.134
Dhule	0.504	0.551	-0.047	Jalna	0.478	0.485	-0.007
Nandurbar	0.478	0.572	-0.094	Beed	0.558	0.628	-0.07
Jalgaon	0.367	0.389	-0.022	**Latur**	**0.546**	**0.542**	**0.003**
Ahmednagar	0.524	0.668	-0.144	Osmanabad	0.454	0.581	-0.127
Pune	0.616	0.659	-0.043	**Nanded**	**0.655**	**0.587**	**0.068**
Solapur	0.666	0.751	-0.086	**Parbhani**	**0.379**	**0.359**	**0.02**
Satara	0.58	0.613	-0.033	**Hingoli**	**0.479**	**0.403**	**0.076**
Sangli	0.591	0.682	-0.092				
Kolhapur	**0.357**	**0.352**	**0.005**				
Vidarbha							
Buldhana	0.446	0.506	-0.06	**Wardha**	**0.708**	**0.673**	**0.035**
Akola	0.462	0.512	-0.051	Nagpur	0.677	0.7	-0.024
Washim	**0.46**	**0.419**	**0.041**	**Bhandara**	**0.503**	**0.496**	**0.007**
Amravati	0.51	0.52	-0.01	**Chandrapur**	**0.627**	**0.616**	**0.012**
Yavatmal	**0.637**	**0.589**	**0.048**	Gadchiroli	0.672	0.694	-0.022

Source: Computed By the Researcher

Table-8
Ranking of Districts in terms of Crisis Index in Maharashtra

Category & index Score	Crisis index (TE04)		Crisis index (TE11)	
	Region	**Districts**	**Region**	**Districts**
Very High 0.603 and above	W=6 M=1 V=4 T=11	Wardha, Nagpur,Gadchiroli, Solapur, Chandrapur, Pune, Sangli,Satara,Beed, Nasik, Ahmednagar	W=2 M=1 V=5 T=8	Wardha, Nagpur, Gadchiroli, Solapur, Nanded, Yavatmal, Chandrapur, Pune,
High 0.602 to 0.532	W=2 M=3 V=1 T=6	Yavatmal, Nanded, Osmanabad, Nandurbar, Dhule, Latur	W=3 M=2 V=0 T=5	Sangli, Satara, Beed, Latur, Nasik,
Moderate 0.531 to 0.461	W=0 M=2 V=4 T=6	Amravati, Akola, Buldhana, Bhandara, Aurangabad,Jalna,	W=3 M=2 V=4 T=9	Ahmednagar, Amravati, Dhule,Bhandara, Hingoli, Nandurbar, Akola, Washim, Jalna
Low 0.460 to 0.390	W=1 M=1 V=1 T=3	Washim, Hingoli, Jalgaon,	W=0 M=1 V=1 T=2	Osmanabad, Buldhana,
Very Low **Below** 0.389	W=1 M=0 V=0 T=2	Parbhani, Kolhapur	W=2 M=2 V=0 T=4	Parbhani, Jalgaon, Aurangabad, Kolhapur

Source: Computed by the Present Researcher

References

1. Bhalla, G. S., & Alagh, Y. K. (1979). *Performance of Indian Agriculture: A District-wise Study*. Sterling. New Delhi.
2. Chandra, D. (2001). Crucial agriculture problems facing small farmers. Political Economy Journal of India. (Vol. 10), pp. 1-4.
3. Deshmukh, Neelima. (2010). Cotton Growers: Experience from Vidarbha in Deshpande**.** R. S., & Arora, Saroj. (ed.), Agrarian Crisis And Farmers Suicide. SAGE Publication.
4. Mishra, S. (2006). Farmers' Suicides in Maharashtra. Economic and Political Weekly. (Vol. 41. No. 16), pp. 1538-1545.
5. Mitra S., & Shroff, S. (2007). Farmers' Suicides in Maharashtra**.** EPW. December 8.
6. Mohanty, B. B. (2005). We Are Like Living Dead: Farmer Suicides in Maharashtra. Western India. The Journal of peasant studies. 32, (2). 243-76.
7. Pillai, S . (2007). Agrarian Crisis and the Way Out*The Marxist**.** (Vol. XXIII. No. 3), July to September.
8. Rudra, Ashok. (1968). More Returns to Scale in Indian Agriculture. Economic and Political Weekly. (October 26), Review of Agriculture.
9. Rudra, Ashok. (1982). Indian Agricultural Economics: Myths and Reality. New Delhi: Allied.

Water Management in India: Current Status and Role of Communication

Sudarshan Yadav[1]

Overview-Water has always been given a sacred position in the centuries-old civilization of India. An interesting feature of all ancient civilization was that they originated and flourished on the banks of the sacred rivers and the influence of the rivers was reflected in all aspects of life. History points out that the awareness existed in Indians about water conservation and management from the time civilisation came into existence. A report published in Economic and Political Weekly reveals that the share of tube wells in irrigated areas of India arose from a mere 1% in 1960-61 to 40% in 2006-07. Uttar Pradesh is at the second position (about 21%) among the states having most of the tube wells in India. The three states (U.P., Punjab and Haryana) combined account for 57% of the tube wells in India.[1]

Seeing the current stress on natural resources due to ever growing population, that too water being the essential element of life, in the coming centuries only that civilization or community will survive which will learn to manage its water sources. And by saving these traditional sources of water conservation, the humans will actually save themselves, their community and future generations. So a study is needed to find out the existing conditions of the water bodies and how the problem of water crisis can be addressed from the communication perspective.

Introduction

Since antiquity water has been used as a symbol to express devotion and purity. Some cultures like the ancient Greeks went as far as to worship gods who were thought to live in and command the waters[2]. Various examples reveal that entire cities have been built by considering the location and availability of pure drinking water. There are several sources of water like surface water, rivers/ lakes, springs, excavated banks, wells and so on. Basically the scarcity of water, pollution load, political issues and rising population has drawn a great attention for proper management of water resources such as surface water in the 21st century.

The holy city of Varanasi is predominantly famous for its ponds and *kunds* (sacred water body near the temple) which are frequently used for religious activities. Pilgrims come for ritual activities throughout the year in this heritage city of Uttar Pradesh which spreads across an area of 1,535 square kilometres (593 sq mi) and as of the 2011 Census of India, had a population of 3,682,194[3]. There are several well-known *kunds* such as *Durga Kund*, *Laxmi Kund*, *Surya Kund* and many more where devotees come in large numbers to perform various sacraments. During 1980s there

[1] Assistant Professor in Central University of Jharkhand. He can be contacted on sudarshanbhu@gmail.com..

were about 110 Ponds and *kunds* in Varanasi but now the number does not exceed more than 56[4].

The city of Benares has long been known to the Europe as the principal seat of Hindu learning and superstition, and as the stronghold of the Brahminical faith in modern times.[5]Its ancient denomination was KASHEE, “The Splendid,” whereof the fabulous wonders are fully detailed in the Kashee-Khund, one of the chapters of the Skundu-Poorana[6]. According to Skundu Poorana, Kashee is a place of most profound antiquity, sanctity and splendour[7]. As it is one of the oldest inhabited cities of the world with a continuous settlement for about 3,000 years, the most recent development in the 20th century has led to several problems regarding the water supply of the city´s population. In the year 1892, the public water supply system was introduced here which is more than 100 years now. In the beginning it was designed for a population of 2, 00,000 people, equipped with one water treatment plant in Bhelupur in the very central area of the city[8].

In the various regions of nearby areas the water supply has been improved with an expansion of raw water transport and treatment capacities, increase of raw water pumping capacity, and enlarged distribution network. However, more distant areas have been equipped with groundwater extracting wells (JNNURM[9] 2006).

At present, about 45 % of the city’s demand is met through water extraction from Ganga River, and another 50 % is covered by 112 deep tube wells. The remaining 5 % comprises more than 1500 publicly and privately owned hand pumps most of which are situated in the Trans-Varuna Area (JNNURM 2006). Different strategies were established in the past to meet the population’s water demand and on a regular basis needed to be redesigned to satisfy the increasing population.

But due to the system´s age and the fact that only minor restoration and renovation works have been done in the past, the water supply system at present suffers from fragility which results in substantial losses of clean water. In some places the water pipes are passed by sewage channels, open drains and nallahs from which sewage may contaminate the clean water because of seepage (JNNURM 2006). The paper basically looks into various nuances like how water management needs to be integrated and what can be the role of communication so that, the persisting problems related to contaminated water can be solved in a holistic way.

Broad Outline of India

“Water, water, everywhere, nor any drop to drink”, these are the lines from the famous poem, The Rime of the Ancient Mariner by the English poet Samuel Taylor Coleridge. The lines in the poem depict the problems faced by the mariners in the ship while they are on a voyage to the Antarctic. Then a time comes when they are out of food and water. Although water is all around them, they cannot drink it for

it is sea water. This situation can be put in today's context too as the fresh water forms are diminishing day by day owing to over exploitation and ever growing pollutants that are dumped into the water bodies along with the global warming. This has contributed to an alarming situation where there will be no water available for drinking or human use in very near future. The UN-Water report 2007 points out that by 2025, almost one-fifth of the global population is likely to be living in countries or regions with absolute water scarcity while two-thirds of the population will most probably live under conditions of water stress.[10]

Now looking in the Indian context this situation can aggravate as India is the seventh largest country in the world and ranks second in population.[11]Most populated regions are around the banks of several rivers across the nation. The plains of the Ganga and the Indus which stretch about 2,400 km long and 240 to 320 km broad, are formed by basins of three distinct river systems- the Indus, the Ganga and the Brahmaputra. They are one of the world's greatest expanses of flat alluvium and also one of the most thickly populated areas on the earth. Between the Yamuna at Delhi and the Bay of Bengal, nearly 1600 km away, there is a drop of only 200 metres in elevation.[12] So, the civilizations across the globe developed and existed on the banks of the rivers. In this context one can see the importance of water in the life of humans.

Water and politics

Delhi election results prove that the common man is looking for a leader who can provide basic needs at affordable prices. Residents of urban as well as rural areas want supply of potable water 24x7. This might be taken as a simple demand which is after all a person's right but in many parts of the country, people face water related problems. In Dakshin Kannada, Karnataka for example, a campaign has been initiated for people to rate politicians against the injustice done to them in the name of the Yettina hole river diversion project.[13]

These days the manifestos of all the major parties have one common agenda in different election which is water scarcity, clean water and so on. Water management and scarcity of water are among the key issues that several parties plan to highlight during the upcoming Uttar Pradesh election in 2017. The winning party of General Election 2014 also gave highest priority to the issue of water security in its manifesto in 2014 and highlighted the possibility of India turning into a 'water stressed' nation by 2050[14]. The party also promised to give priority to cleanliness and sanitation issues by setting up efficient waste and water management systems. The winning party also proposed to recharge groundwater by harvesting rainwater and carry out examination of groundwater to eliminate toxic chemicals, particularly arsenic and fluorides. During the General Election 2014 other parties also addressed the issues related to water. The mindset of Indians is changing and it seems very soon only water may decide who will win the different elections.

Water Crisis

India's huge and growing population (1.2 billion) is putting a severe strain on country's natural resources[15].Out of the total population, 77 million people lack access to safe water and 769 million lack access to improved sanitation[16]. The water sources are mostly contaminated by sewage and agricultural runoff. The different studies reveal that India has made progress in the supply of safe water to its people, but gross disparity in coverage still exists across the nation. Although access to drinking water has improved, the World Bank estimates that 21% of communicable diseases in India is related to unsafe water[17].

The report published by the BBC News on March 27, 2016 titled '*Is India facing its worst-ever water crisis?'* gave insights about the worsening condition of the nation due to shortage of water. The report discussed in detail as how on 11 March panic struck engineers at a giant power station on the banks of the Ganges river in West Bengal. The readings indicated that the water level in the canal connecting the river to the plant was going down rapidly. By next day, authorities were forced to suspend power generation at the 2,300-megawatt plant in Farakka town causing shortages in India's power grid[18]. The worst happened when the township on the river ran out of water. Thousands of bottles of packaged drinking water were distributed to residents, and fire engines were rushed to the river to extract water for cooking and cleaning the power station. National Thermal Power Corporation, which happens to be one of the 41 state-owned power grids and generates a quarter of India's electricity, was shut for 10 days in an unprecedented move in its 30-year history[19].

Nobody was able to give definite reason as to why the water level on the Ganges receded at Farakka where India built a barrage in the 1970s to divert water away from Bangladesh. Much later, in the mid-1990s, the countries signed a 30-year agreement to share water. (The precipitous decline in water levels happened during a 10-day cycle when India is bound by the pact to divert most of the water to Bangladesh. The fall in level left India with much less water than usual.)[20]

The alarming situation for India needs to be dealt in a proper and planned way. As per a UN report published on water conservation in March, 2014, India will face the consequences if it will not plan for water conservation[21]. The report predicted that by 2025, nearly 3.4 billion people will be living in 'water-scarce' countries and the situation would become grim in the next 25 years. The report added that due to its unique geographical position in South Asia, Indian sub-continent may face the brunt of the crisis and India would be at the center of this conflict[22].

Historical Background: Government Policies

A chronology of events in the evolution of the Government Water Policies in India

1866 The government is given the main role in the irrigation and development

1935 Central government transferred irrigation to the states governments.

1950 Beginning of the planned development

1972 Second irrigation commission report

1980 The RashtriyaBarhAyog (National Commission on Floods) submitted its report.

1986 Formulation of NWRC

1987 National Water Policy (1987) finalized in the first meeting of NWRC

1994 Modified draft of National Water Policy Allocation among states, circulated to the states.

1998 Water sector review by the GOI and World Bank

1999 Second meeting of NWRC considered water allocation and river basin authorizes

1999 Report of the National Commission on integrated water development

2000 Water vision by India Water Partnership

2002 National Water Policy (2002)

2004 CPSP India studies by ICID-IAH

2012 National Water Policy (2012)

Source: WATER POLICIES AND LEGAL FRAMEWORK IN INDIA by Mohd Shawahiq Siddiqui[23]

Water Management

In India the crisis could have been largely avoided with better water management practices but unluckily it was not done. Due to distinct lack of attention to water legislation, water conservation, efficiency in water use, water recycling, and infrastructure; this crisis has come to the fore. Water has always been viewed as an unlimited resource that is not required to be managed as a scarce commodity or provided as a basic human right and it seems this attitude has harmed the country. India's primary goals since independence have been economic growth and food security completely disregarding water conservation. As of today, this has triggered serious complications as many citizens still operate under these principles. Unlike many other developing countries, especially those with acute water scarcity issues such as China, Indian law has virtually no legislation on groundwater. Anyone can extract water: homeowner, farmer or industry as long as the water lies underneath their plot of land[24]. The development and distribution of cheap electricity and electric pumps have triggered rapid pumping of groundwater and subsequent depletion of aquifers. There are approximately 20 million individual wells in India that are contributing to groundwater depletion[25].As the owners of these wells do not have to

pay for water, no efforts are taken to conserve or recycle it; in fact they are incentivized to overdraw resources. The industry applies the same logic, and rather than reusing the water used for cooling machines, dumps it back into rivers and canals, along with the pollution it has accumulated. Even when the Ex-Prime Minister Manmohan Singh warned against over-pumping, local officials didn't make any effort to raise electricity tariffs that would have upset the huge farm lobbies[26].

Communicating Water

Communication plays the pivotal role in solving any crisis. In the present situation proper use of communication can go a long way in solving the crisis. There are different communication strategies that are developed by several organizations to solve the water scarcity. Some of them have tasted success as well.

Kenya's water sector aimed at improving water resources management and the provision of water and sanitation services on a sustainable basis by undertaking different reforms. The reforms are enshrined in the Water Act 2002 and the process is being steered by the Ministry of Water Resources Management and Development (MWRMD).In the report Implications of Research Findings on the Communication Strategy, the government of Kenya, in detail, mentions the communication strategy used and how it became successful. The SWOT analysis is the first step of any communication plan and the report mentions it in detail. The situation analysis presented a combination of positive knowledge and attitudes as well as the fundamental problem areas that must be comprehensively and urgently addressed. The communication strategy mainly focused to build on positive levels of understanding, correct misperceptions and fill knowledge gaps, address stakeholder concerns, provide partnerships with opinion leaders, consider both short and long term communications, strengthen public participation mechanism and build communication capacity within the sector: Monitoring and evaluation also plays a significant role in making any plan successful as it was evidenced by the success case story of Kenya.

WaterComm is a website which develops short, innovative, and effective communication strategies for water-related challenges on all levels. The strategies are based on analysis, and decades of experience, and aim to add value to communication activities and approaches. WaterComm associates have a notable experience in developing water sector-specific as well as other communication strategies[27].This kind of specific websites underlines the importance of communication in managing water to have a healthy society.

Traditional Wisdom: In the Context of Varanasi

Since ancient times Varanasi has made a name for itself in the area of trade and business due to its geographical location. The history of Varanasi was confined to the traditional structure in which mainly religious rites were prominent.

Throughout the history it was businessman who helped in spreading and promoting the religion and its discourses whether it was about Hinduism, Buddhism or Jainism. In Varanasi, religion and Sanskrit education is still being promoted by trader communities.[28]Minus the presence of traders and business in Kashi, it would have never gained the human culture (nagarik Sanskriti) and would have remained only a place of stay for people (pilgrims).[29]The culture of Varanasi took shape in the ancient times and is still the same at the basic level even after going through many changes over a period of time. The importance of Varanasi in the context of religion can be understood from the fact that along with Hinduism, Buddhism, Jainism (Parshawanath, one of the 24 Tirthankaras of Jain sect, was born in Varanasi) and Sikhism (Guru Nanak and Teg Bahadur stayed here for some time) also grew in the city with the city becoming an important centre for all these religions. Varanasi has people of various sects coming for pilgrimage and then staying here giving it a cosmopolitan structure which is still intact. This is one of the reasons why people from different parts of the world are attracted to Kashi and Kashi has played an important role in establishing the harmony among multicultural Indians.[30]

As far as the political history of Varanasi is concerned, it gained importance during the reign of Gahadwals who made Kashi their capital. As a result of this, Varanasi turned into a city of prominence in the North India from the religious, political and educational perspective. The political scenario kept on changing but it never weaned off Varanasi's importance. Thus its religious and educational activities never got hampered. Though Varanasi was the centre of many religions and sects, the most prominent among them was Shaivism (Yawan Chavang, 7th century)[31]. Varanasi is still a prominent seat of Shaivism with many Shiva lingams found around the city. Thus with Shaivism, the importance of Ganga also increased and during Gahadwals reign many *ghats* of Varanasi along the banks of Ganga were built.[32]

Ponds and Kunds of Varanasi

There are a number of ponds and *kunds* of religious significance in the city which used to help in dampening the storm water during heavy rains. Most of these ponds are in a state of poor maintenance and face the threat of reclamation due to upcoming settlements in the periphery regions. The storm water storage capacity of ponds has gone down considerably leading to water logging in many parts of the city. These ponds lack the connectivity with the storm water drainage network so that in the situation of excess rainfall they create water logging in their surroundings. Due to expansion and development of the city, the natural courses of ponds were disturbed which were well inter-connected. During heavy rains, the ponds overflow and rainy water accumulates at roads and nearby localities leading to water logging for long periods. The city has an intensive network of open drain which acts as outlets for waste water discharge and solid waste dumping. Siltation and working of drains due

to solid waste disposal is leading to unhygienic conditions. Overall, the entire drainage system works at just 10 percent of its total capacity.

Conclusion

Seeing the overall scenario of India and the UN Water Report 2007, it can be said India will be facing the water stress in the coming years given the ever-growing population that has reached billions. The pollution of the chief rivers and its tributaries, along with the dying of existing (traditional) water conservation sources, is making this situation more alarming. In India, since ancient times, importance of water has been underlined in our day to day life and communities and individuals worked to make ponds, wells, lakes, etc.; to meet their needs and conserving water. But meeting the needs of an ever-growing population required a mass production and for this mass production, industries were needed. The raw materials, which of course came from the nature for making goods, resulted in the over exploitation of environment. Also to process those goods needed water and, therefore, these industries were set up on the banks of different rivers. Effluents from these industries resulted in the pollution of rivers, of which the river Ganga and Yamuna remain the most affected.

The growing population then moved to extract ground water for meeting its water requirements. This led to over exploitation of water resources. Varanasi which is home to large sources of water is also heading towards a water scarcity. With two major rivers, the Ganga and the Varuna, around more than 40 *Kunds* and many more ponds and lakes; this city has water in abundance. But now, apart from these two rivers which are already facing menace of pollution, all those more than 40 *kunds* and ponds are on the verge of dying.

Given the importance of this city and the tourist projects in coming years, this region is going to face the water issues very soon. For that government and different agencies are working. But since this issue is something related to existence of each one of us, community participation is needed. As envisaged in the water policy of India, there is a need for participatory approach including all the stakeholders from the society. This includes even research so that its outcome can reach people and help them for better future. And communication being the core of human existence and development, there is a need to make people aware and informed about these issues so that human civilization continues to exist.

Endnotes

---

[1] Vijay Shankar P S, KulkarniHimanshu, Krishnan Sunderrajan. India’s Ground Water Challenge and the Way Forward, *Economic and Political Weekly*. January 8, 2011. Vol XLVI No. 2.

[2]http://www.laleva.cc/environment/water.html (Retrieved on 05.07.2016).

[3]http://www.censusindia.gov.in/pca.html (Retrieved on 12.07.2015).

[4]Research paper Studies of Physico-chemical Status of the Ponds at Varanasi Holy City under Anthropogenic Influences published in International Journal of Environmental Research and Development. ISSN 2249-3131 Volume 4, (2014, Number 3). pp. 261-268. Downloaded from http://www.ripublication. com/ijerdspl/ijerdv4n3spl_10.pdf (Retrieved on 05.05.2016).

[5] James, Princep., & Preface, Benares. (1996). Illustrated. Varanasi: VishwavidayalayaPrakashan. p. 5.

[6]James, Princep. (1996). Introduction, Benares Illustrated. Varanasi: Vishwavidayalaya Prakashan. p.7

[7]Ibid. p 7

[8]http://www. waterandmegacities.org/the-history-of-water-supply-in-varanasi/ (Retrieved on 17.09.2015).

[9] Jawaharlal Nehru National Urban Renewal Mission

[10] Water and society: past, present and future. Philosophical Transactions of The Royal Society A (2010) 368, p. 5107.

[11]India (2011). Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting. Government of India. pp. 1.

[12] India (2011). Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting. Government of India. pp. 2.

[13]http://www.indiawaterportal.org/articles/elections-manifesto-2014-water-policy (Retrieved on 29.11.15).

[14]http://www.indiawaterportal.org/articles/elections-manifesto-2014-water-policy (Retrieved on 29.11.15).

[15]http://water.org/country/india/ (Retrieved on 14.7.16).

[16]http://water.org/country/india/ (Retrieved on 14.7.16).

[17]http://water.org/country/india/ (Retrieved on 14.7.16).

[18]http://www.bbc.com/news/world-asia-india-35888535 (Retrieved on 16.6.16).

[19]http://www.bbc.com/news/world-asia-india-35888535 (Retrieved on 16.6.16).

[20]http://www.bbc.com/news/world-asia-india-35888535 (Retrieved on 16.6.16).

[21]http://www.oneindia.com/feature/no-drinking-water-india-2040-how-will-government-tackle-1492796.html (Retrieved on 16.7.16).

[22]http://www.oneindia.com/feature/no-drinking-water-india-2040-how-will-government-tackle-1492796.html (Retrieved on 16.7.16)

[23] Mohd, Shawahiq. Siddiqui. Water Policies And Legal Framework in India, Accessedfrom:www.acedemia.edu/3343464/Water_policies_and_legal_framework_in_India; Accessed on 30 July 2016.

[24]Sengupta, Somini. (2006, September 30). India Digs Deeper, but Wells Are Drying Up. New York Times.

[25]Ibid.

[26]Running on Empty, (2007, July). Global Envision.http://www. globalenvision.org/library/1/1685.

[27]http://www.watercomm.net/ (Retrieved on 15.06.2016).

[28]Motichand, Dr., (2010). Do Sabd, in KashikaItihas Varanasi: VishwavidayalayaPrakashan. 4th Edition, p 9.

[29] Ibid pp. 11.

[30] Ibid pp. 9.

[31] Ibid. 10.

[32] Ibid. 10.

ISSN : 2395-7468

Girl's Education and Empowerment as issues of pivotal concern by Malviya Ji and Key Challenges

Dr. Neha Pandey[1]

Madan Mohan Malviya ji can best be described as the visionary of modern India. He was a social scientist who envisaged the importance of education as institutions of learning, empowerment and development. Education remained the issue of pivotal concern for Malviyaji. Pandit Madan Mohan Malviya created history in Indian education with this institution - the first of its kind in the country. He chose Banaras as the site, because of the centuries old tradition of learning, wisdom and spirituality inherent to the place. His vision was to blend the best of Indian education called from the ancient centres of learning - Takshashila and Nalanda and other hallowed institutions, with the best tradition of modern universities of the west.

Great minds and personalities like Annie Besant, Mahatma Gandhi, Rabindranath Tagore, Shyama Charan De and many others joined hand with him in his quest for knowledge, arousing the national spirit in India and winning freedom with the power of education and righteousness.[1] Even today, education occupies the first position in the policy papers of developmental and administrative minds. In India, female literacy is still just halfway. According to last census held in 2001, the percentage of female literacy in the country was 54.16%. Education is power and empowerment at the same time.

Education is a fundamental human right. Every child is entitled to it. It is critical to our development as individuals and as societies, and it helps pave the way to a successful and productive future. When we ensure that children have access to a rights-based, quality education that is rooted in gender equality, we create a ripple effect of opportunity that impacts generations to come. Education enhances lives. It ends generational cycles of poverty and disease and provides a foundation for sustainable development. A quality basic education better equips girls and boys with the knowledge and skills necessary to adopt healthy lifestyles, protect themselves from diseases, and take an active role in the social, economic and political decision-making process.

In addition, a rights-based approach to education can address some of societies' deeply rooted inequalities. These inequalities condemn millions of children, particularly girls, to a life without quality education – and, therefore, to a life of missed opportunities.[2] Gender disparity of any sort at any place and at any snapshot of time is the worst form of deprivation and exclusion. If in education, it is a plague eclipsing the achievement of any other millennium development goal.

[1] Assistant Professor, Department of Journalism and Mass Communication, Banaras Hindu University, Varanasi.

EMPOWERING WOMEN

The main argument in this paper is that education in itself is empowerment. “There is no chance for the welfare of the world unless the condition of women is improved. It is not possible for a bird to fly on only one wing,” said Swami Vivekananda. But through centuries, societies in the world over have been trying to fly on only one wing, denying women their rightful place. Empowering Women aims to inspire women with the courage to break free from the chains of limiting belief patterns and societal or religious conditioning that have traditionally kept women suppressed and unable to see their true beauty and power.

There is a pertinent need to empower women and the competitiveness of the country depends on the capability of its women who constitute nearly half of the Indian population. This enormous contribution to the country will greatly heighten the country’s advancement.

Madan Mohan Malviya was a strong demander of women rights. He was of the notion that any country which ignores a half of its population and socially excludes women can never progress and develop. Even after more than six decades of India’s Independence, our society is still patriarchal in praxis. Only small populations of our women are able to break the shackles of domestic chores.

It is deemed that education is like a capsule which when administered can help in accomplishing all other development goals. If females are educated, country is educated and is immunized against all other ailments. Therefore, the present study attempts to uncover the reasons why and under what circumstances girls inch away from studies, either forcibly or willingly. It uses primary data collected from schools of Tikri and Tarapur villages of Varanasi district and also from secondary sources like print media.

FRAME OF REFERENCE

Economic growth in India has been strong over the past decade, especially in the information technology sector. But significant disparities remain, based on class, caste, gender and geography. The United Progressive Alliance coalition government, which came into power in May 2004, has pledged to emphasize social development as part of its National Common Minimum Programme. It seeks to eliminate some of the inequalities in Indian society by reducing poverty, increasing public spending on education, speeding the delivery of health services, and improving nutrition and food security.

With one upper primary school for every three primary schools, there are not enough upper primary centers even for those children who complete primary school. For girls, especially, access to upper primary centers becomes doubly hard.

The gross enrolment ratio in primary education has increased, with much of the growth attributable to increased enrolment of girls. Serious concerns exist with respect to quality of education due to high drop-out rates and poor learning achievements. Although there is improvement in the ratios of girls to boys in primary, secondary and tertiary education during the past decade, they are far from reaching the goal of parity. And girls belonging to marginalized social and economic groups are more likely to drop out of school at an early age.[3]

While most of the Millennium Development Goals face a deadline of 2015, the gender parity target was set to be achieved a full ten years earlier - an acknowledgement that equal access to education is the foundation for all other development goals. Yet recent statistics show that for every 100 boys out of school, there are still 117 girls in the same situation. Until equal numbers of girls and boys are in school, it will be impossible to build the knowledge necessary to eradicate poverty and hunger, combat disease and ensure environmental sustainability. And millions of children and women will continue to die needlessly, placing the rest of the development agenda at risk.

As of 2001 estimates around 115 million children of primary school age, the majority of them girls, do not attend school.[4]

THEORETICAL FRAMEWORK

The disadvantages facing women and girls are a major source of inequality. All too often, women and girls are discriminated against in health, education and the labour market—with negative repercussions for their freedoms.[5] Human development needs its own specific goals like literacy or basic education for all. And it needs to be an overall goal—the main focus of development.

UNICEF advocates quality basic education for all, with an emphasis on gender equality and eliminating disparities of all kinds. In particular, getting girls into school and ensuring that they stay and learn has what UNICEF calls a "multiplier effect." Educated girls are likely to marry later and have fewer children, who in turn will be more likely to survive and be better nourished and educated. Educated girls are more productive at home and better paid in the workplace, and more able to participate in social, economic and political decision-making.

Conversely, denying children access to quality education increases their vulnerability to abuse, exploitation and disease. Girls, more than boys, are at greater risk of such abuse when they are not in school. For many villages, a school also provides a safe haven for children, a place where they can find companionship, adult supervision, toilet, clean water and possibly meals and health care.

UNICEF has also intensified '25 by 2005,' an acceleration strategy involving advocacy, funding, problem-solving and community partnerships to improve gender

parity in education in 25 diverse countries where assistance is most urgently needed in this area.

CONCEPTUAL FRAMEWORK

The twin and interlinked problem of gender disparity and female illiteracy needs to be attacked at its root. One needs to fully understand the reasons as to why girls fail to continue their schools despite government schemes. There are two interesting claims among researchers in the area of female education and development, both placing utmost importance on the issues interwoven with education to girls and women in postcolonial sites. The first is a statement that 'modern' (which is also seen as 'Western') education is indeed needed for women's voices to be heard. This is often linked with human rights, education, socio-economic conditions and human development ((for e.g., Afshar, 1998; Ghosh & Talbani, 1996[6]; ; Kabeer 1999[7]; Unterhalter, 2000[8]; Wazir, 2000[9]).

These researchers have stressed the need for women to be heard, given the situation of alarming female illiteracy, as well as documented lack of access to awareness of rights and issues of power, control and subordination. They have argued that social change can and will happen along with female education .

The second claim appears contradictory, takes into consideration the role of education in women's lives, arguing that education makes no difference to change women's life conditions (Longwe, 2001). Sarah Longwe, from Africa, observes that women with modern education conform to and benefit from patriarchal systems. She states:

The purpose of schooling is to inculcate girls' acceptance of the 'normality' of male supremacy … to believe it is 'traditional' and 'natural' for their role to be confined to rearing children, looking after the home, and supporting their husbands. (Longwe, 2001, p.68)[10]

OPERATIONAL FRAMEWORK

Once the disease is identified, one needs to prescribe the medicines. Similarly, in this case a need based solution is provided to approach cent percent literacy for females.

OBJECTIVES:

- To identify the many circumstances that perpetuate gender inequality in educational environments
- To discuss the importance of educational opportunities for females
- To demonstrate the ability to use communication skills to enhance the awareness of girls' education as an important global issue

METHODOLOGY

A pilot study in the form of a survey was done in the Tikari and Tarapur village of Varanasi district. The sample was drawn in this manner: The girls studying in GGIC, Tikari of class IX were asked to call their mothers in the school premises. Permission for the same was taken from the principal. The total sample size was restricted to 65. An interview schedule was used in order to get the detailed perceptions and misconceptions.

The aim was to understand the perspectives and opinions of rural-mothers regarding their daughter's educational needs. The variables included in this study were the importance of education in the life of a women, household work shared by daughters, major problems in way of girls' education, reasons for sending girls to school, reason for not sending girls to school, availability of media, awareness about education rights, family pressure, family structure, past trends of the village, average marriage age, post-marriage education scenario, inner voice regarding differential treatment of sons and daughters, and the perceived system of justice, etc.

FINDINGS

Importance of education: Most of the women agreed that education is important for earning. They associated this with their inner desire that they want their daughters to be independent.

Household work shared by daughters: Almost 72% of respondents accepted that they engage their daughters in household chores. Boys are never asked for such help. Even the girls said that it is their fathers and brothers who demanded that all the studies are done in school. In home, girls should not study but be helpers to their mother.

Major problems in way of girls' education: The mothers said that they are the only supporters. Lack of support from husbands and corrupted mindset of the bread-earner disregarding the basic need of education acted as the major hindrance in the road to education for girls. Cost of books and uniforms added to this grave issue.

Reasons for sending girls to school: Media played an important role in making people aware about the need to treat male and female child equally and also regarding the need for girls' education.

Reason for not sending girls to school/colleges: Women agreed that they are themselves not convinced to send their girl child for higher education as it had it added risks so far so the security and chastity of their daughters are concerned. As far as primary education is concerned, nearby schools are fine.

The lack of clean and separate sanitation facilities in schools discourages many girls from attending school full time and forces some of them to drop out altogether, particularly as they approach adolescence and the onset of menstruation. 82% of the respondents cited this as the major issue and it was supported by their girl child.

Lack of water in the household also keeps girls away, as they are usually the ones designated to walk long distances to fetch the household's water supplies.

Availability of media: Television and Radio were the prevalent media options and the women were aware through government advertisements about the importance of education.

Awareness about education rights: Only 35% of the respondents were aware that education is a right granted to all by the Indian Constitution.

Family pressure: Issues of dominance, power, control, attitude and subjugation emerged as outcomes of patriarchal tradition of Indian society. Girls often bear the brunt of these problems. They are the first to be withdrawn from school if money is short or if household work needs attention, if family members need to be cared for, if the school is too far away, or in situations of pervasive insecurity.

Family structure: The mothers agreed that joint family structure offered a serious threat to the prospect of educating females even at the school-level. The grandmothers were the identified villains and so the husbands also followed suit.

While the women who lived in nuclear families had a say in the decision making and could raise voices in support of girls' education.

Past trends of the village: The respondents agreed that the men folk never cited or acknowledged the positive role models. They always cited the mishaps and negative stories as portrayed in media about sexual abuse of girls in schools.

Average marriage age: The average marriage age of girls was 15.

Post-marriage education scenario: Almost an impossible imagination. Only some learned families allow their daughter-in-laws to continue her education. Her dream is smashed and her desires throttled.

Inner voice regarding differential treatment of sons and daughters: 92% of the women agreed that they were themselves the victim of such differential treatment. They were the one who suffered the socially accepted practice of women eating last in the family and being expected to be satisfied with leftovers. But they all strongly protested this discrimination in one voice. They said they don't want their daughters

to suffer the similar derogatory treatments. Their share of love and care is equal and is not gender dependent.

Perceived system of justice: They were happy that they were made aware of important issues concerning their daughters from this interactive-exercise. They opined that government and whichever organization is working in this direction should not stop with the designing of policies and drafting them. They should actually monitor from time to time if their beneficiaries are included in the ambit of their developmental umbrella or not and should take corrective actions.

Secondary data gathered during study suggests that situation is never even this much favourable for everyone. Although the girl students of this locality were lucky to have availed these benefits of enrolment and continuing education till class X. Yet even these basics are beyond reach for hundreds of millions of girl-children. These children are deprived of their right to education because their families cannot afford school fees or other related costs, or because their communities are too poor or remote to have school facilities and supplies, or because they have to work to put food on the table. Children of indigenous populations or ethnic minorities often face discrimination and are excluded from education, as are children with disabilities.[11]

Political, religious and social barriers stand in the way of girls and education. The effect, the promise of a new generation is largely lost.

LIMITATIONS

As with every study, the present one is also constrained by certain limitations. First, only certain regions of Varanasi were researched to know their awareness about gender and educational issues. Next, the study is restricted to a sample of 65 mothers for the initial awareness evaluation. Therefore, all the findings are strictly based on this sample and do not proclaim the holistic picture of Varanasi. Also, the survey was based on convenience method of non-probability sampling. However, the study is not about numbers and percentages. The real purpose was to depict how a small pilot study can help uncover the stigma, reasons and perceptions among female regarding gender-based disparity in education.

RECOMMENDATION

Communication is the fundamental requirement for implementation of any government policy. Even human development goals enshrine the need of information and communication technologies. The need is to identify nodal points where communication specialists as facilitators can help in providing information. The mission is – Let's educate our daughters. Some suggestions:

- Use of communication to disseminate information about educating daughters at all levels

- Each one-teach one everyday model, take the pledge that we will make one person aware.
- Target group can include maid servant, gardener, mason, cobbler, flower-seller, street vendors, rag-pickers, carpenters, so on and so forth.
- Community radio on this theme running a half hour programme can be started.
- Opinion leaders need to be identified who can disseminate information regarding as they have a say among community members and are authentic figures. Source credibility amplifies the message. Diffusion of information like ***Diffusion of Innovations*, by Everett Rogers (1995)** is effective if it comes through opinion leaders.[12]
- Block Development Officer should be informed about the potential of communication in the area of literacy.
- Mass media campaigns apart from inter-personal and group communication should focus more and more on inculcation of positive role of education in girl's life.
- Media should publish information regarding new developments, initiatives, positive case studies, and the information providers can rely on those authentic, regular and updated information.
- Positive case studies in the form of skits and drama should be performed in villages at regular intervals.
- Helping schools provide supplies, safe water and sanitation. Water, sanitation and hygiene are crucial to getting and keeping girls in school, as they bear the brunt of unhygienic sanitation facilities.
- Education should be promoted as a substitute for dowry.

CONCLUSION

India ranks 115 in the 'medium development' category in the UN Human Development Report (2001), which raises concerns about how politics of education and economics of education are sidelining the intrinsic, emancipatory value of education. Amartya Sen's thoughts and works have influenced governments to recognize the need to enhance the quality of female education as a top priority. Functionalist developmental goals for education are a far cry from such enhancement as long as issues of gender, caste, class and ethnicity are ignored. The goal of educating girls and women towards empowerment, as better agents and for a fuller expression of human capabilities, is still underachieved.

Gender inequality and illiteracy have become the biggest pandemic of so-called shining India. Let's remember our founder's vision for a moment and on this auspicious day promise as academicians to work in the direction of developing panacea for these pandemics

Educating girls advances development for all. If ignored today, we have to pay the price heavily. Remember that a son is a son till he gets a wife but daughter is a daughter for the lifetime.

Endnotes

[1] http://www.bhuagrimanagers.in/index.php?option=com_content&view=article&id=68&Itemid=123.Retrived on 22/04/ 2016

[2]http://www.unicef.org/education/index.php Retrieved on 22/04/ 2016

[3]http://www.ungei.org/infobycountry/india_114.html. Retrieved on 22/04/ 2016

[4] http://www.unicef.org/mdg/education.html. Retrieved on 22/04/ 2016

[5] http://www .HDR_2010. Retrieved on 22/04/ 2016

[6] Ghosh, R., & Talbani, A. (1996). India. In G. C. L. Mak (Ed.), *Women, education, and development in Asia: Cross- national perspectives*. New York: Garland Publishing. Inc.

[7] Kabeer, N. (1999). Resources. agency achievements: Reflections on the measurement of women's empowerment. Development and Change. 30, pp. 435-464.

[8] Unterhalter, E. (2000). Transnational visions of the 1990s: Contrasting views of women education and citizenship. In Arnot, M. & J. Dillabough. (Eds.), Challenging democracy: International perspectives on gender. education and citizenship. London: Routledge.

[9] Wazir, R. (2000). Profiling the problem. In R.Wazir (Ed.), The gender gap in basic education: NGOs as change agents New Delhi: Sage Publications India Pvt. Ltd. pp. 15-37.

[10] Longwe, S. H. (2001). Women's right to unlearn. *Convergence, 34* (2-3), 65-72.

[11]http://www.unicef.org/mdg/education.html. Retrieved on 22/04/ 2016

[12] http://www.stanford.edu/class/symbsys205/Diffusion%20of%20Innovations.htm. Retrieved on 22/04/ 2016

A More Traditional View to Digital Preservation

Dr. Aditya Tripathi[1]

Overview- Preservation is a practice of increasing the longitivity of object which contains knowledge or piece of information. The growth of digital documents over a period of time is because of the change in publishing pattern towards electronic medium and recognition of digital formats as a medium for documentation and communication. The focus of the paper is to present a conceptual parallel between traditional preservation and digital preservation. It is always desired that the original must be preserved for the use of posterity.

The Open Archive Information System (OAIS) Model and even PREMIS data model do provide broad level guide for projects compare to floor level guidelines. The decisions, while working with a digital object on floor, about its treatments and remedial practices are mostly situational and it is much similar to traditional concepts of preservation. The present discussion focuses on the conceptual objectives of preventive and curative techniques in traditional and digital environment. There is a great deal of parallelism between traditional and digital preservation. Only the object type differs.

The paper further highlights the need of new studies in preservative and curative documentation and applied techniques used in digital preservation in the light of traditional preservation techniques. The paper discusses basic concepts of preservation and their implications to long term digital preservation. The paper does not give a detailed account of different digital preservation techniques. There have been several publications and ongoing projects on digital preservation. The paper provides a fresh conceptual view to digital preservation in connection with traditional preservation practices.

Introduction

Digitization phenomenon has triggered publication in digital format and it has grown exponentially. The digital objects are no more restricted for elite and learned class but under e-governance objects are created for the use of common man. These objects range to text, audio-visuals and graphics. The digital container and the content both must be preserved for the use of posterity. Digital archives at national and regional level must store whatever is published in digital format. Since, digital media is proven medium of content preservation for traditional paper writing, paintings, photographs, musical recordings, movies etc. Hence, there are number of projects for media conversion which qualifies the copyright laws like Universal

[1] Associate Professor and Head, Department of Library and Information Science, Banaras Hindu University, Varanasi, Email. - aditya.tripath@gmail.com

Digital Library (UDL) of Carnegie Mellon University (Universal Digital Library, 2010). Hence, the present and the future will see heap of digital documents which are either Born Digital or converted from physical form. The need of archiving them and managing through the future with their all the original features is going to be a great challenge.

The technological growth and its fast obsolescence have generated many concerns like sustainability to support both hardware and software (Ritschard, 1998). Dependency of digital production on any of specific hardware or software leads to a binding with a particular vendor or product. This leads to loss of information with the disappearance of vendor or product from the market, remember the days of WordStar, which is not available anymore. Therefore, the preservation of the objects is an eminent phenomenon. There are several projects already on floor but the scope and theory to the discipline is still lagging far behind.

Preservation and Digital Preservation

Preservation itself is an established subject. By definition “preservation means reducing the process of deterioration for longer life and use of objects” (Agrawal, 1984). Traditionally, there are two types of preservations, Preventive preservation and Curative preservation. Preventive preservation basically limits to environment control and protection from undesired happenings. Curative preservation means restoration of the object which has been already damaged or in the process of damage. Both preventive and curative preservations have certain procedures which are used during the preservation process of traditional objects or artifacts (i.e. non-digital objects) (Nicklin, 1983b).

Digital preservation is another (may be the third one) method of preservation of traditional objects or artifacts (Priscilla, 2008). In digital preservation, properties of object are captured in digital format like content (information), dimensions, coloration, audio, video and so on and a digital surrogate is prepared. This digital surrogate can be used for study and could be easily transported over network. The original object is required only when the physical properties of the material(s) of the object needed to be studied. This reduces the physical exposure of the original to a great extent and increases its longitivity (or life) (Day, 2008).

Apart from the digitization of the objects there is exponential growth in publications of digital borne documents like, e-books, e-journals, other electronic forms and formats (Fenton, 2006). The publications of this kind should also be preserved for future use. With the advent of electronic publication publishing is done through live events, like streaming video, audio commentaries, graphics etc apart from the regular e-text. (McGovern, 2007)

There are many facets to the scope of digital preservation. The scope of digital preservation is not restricted only to preserve the information contained in the object or in other words, to the bit-stream. In order to preserve the information, the storage medium in which information is contained has to be also preserved. In order to play the media, specific devices which are used are also required to be preserved. For example, an 8 bit program needs an 8 bit processor. Considering preservation of any 8 bit object (or program) one must atleast preserve an 8 bit machine to play the object (or program) because none of the present machines would able to play the object (or program). Preserving storage media or hardware may lead to traditional preservation techniques like keeping it safe against humidity, temperature, light, growth of biological objects etc. Hence, the scope of Digital preservation appears little more complex than the traditional preservation and can be defined as:

- Preservation of digitized object or bit-stream;
- Preservation of digital born object or bit-stream;
- Preservation of digital storage media; and
- Preservation of playing devices (hardware devices)

Approach to Long term Digital Preservation

According to literature, Preservation is of two types, Preventive and Curative. Preventive preservation is used for increasing the life expectancy of the objects (Plumbe, 1964a). In order to increase the life expectancy of digital objects storage and handling specifications must be specified with object itself which includes preservation, descriptive and administrative information (U. S. Government Printing Office). This may become crucial for intended future use of the objects. The following activities are to be done for preventive preservation of digital objects,

- Control of temperature
- Control of humidity
- Control of light

Packaging of object – encapsulating the object to prevent from physical attacks and deteriorations

- Securing from physical damage
- Assigning preservation metadata
- Assigning descriptive metadata
- Assigning administrative metadata

The first five activities are same as traditional preservation techniques but the later three are specific from the point of view of digital preservation. It is equally important to record the behavior of the object for future use which includes recording

storage condition, physical and functional features of the objects and usage conditions etc. This part is more kind of a documentation work.

In curative preservation, the damaged object is to be restored to the original. Traditionally, the restoration of artifact is a difficult exercise. There are different kinds of activities for different kinds of artifacts, like, cleaning, chemical treatment, repair work etc. The objective of curative preservation is to bring the object to nearly original. In digital preservation, it is important to restore the original bit-stream in order to restore the information contained. If the storage media could not be restored but the bit-stream is restored from the media also is sufficient enough. However, some experts may not agree because the detachment of the original bitstream from the original media but restoring to the original as such is a MYTH!!! However there are methods to treat the digital objects to keep in as original,

- Refreshment – copying the bit-stream into a state of art storage or changed storage media
- Migration – conversion of either a more current version of its own file format, or to another, which is easier to handle and access.
- Emulation – creation of a duplicate environment in order to play the digital object. For example, WINE is a windows emulator for linux environment.
- Replication – bit-stream mirroring or object mirroring
- Validation – testing the trust worthiness of object
- Repair – Recreating the lost bit-stream

Conclusion

The common understanding about digital preservation is to convert a physical object into digital format. However, the digital format also requires preventive and curative techniques to preserve the object and the content. Hence, the preventive and curative techniques are used for long term preservation of digital objects no matter which way the object is created. It is very clearly demonstrated in the discussion that there is a great deal of parallelism between traditional preservation and digital preservation. The concept of digital preservation though sounds different but must be revisited in the light of traditional preservation techniques. In any traditional curative or preventive techniques reversibility of process is an important issued which must be discussed at great length for digital preservation also. However, in the present paper scope is only restricted to draw the conceptual parallel between traditional preservation and digital preservation. The need of documentation and use of preservative and curative techniques must be further investigated to demonstrate very clearly that digital preservation is part of traditional preservation technique, only the tools and methods differ.

References

1. Agrawal, O. (1984). *Conservation of manuscripts and paintings of South-east Asia*. London: Butterworths.
2. Nicklin, K. (1983). *Traditional preservation methods: Some African practices observed*. Museum, 35, (2) 123-127.
3. Day, M. (2008). Toward Distributed Infrastructures for Digital Preservation: The Roles of Collaboration and Trust. International Journal of Digital Curation . 3, (1).
4. Fenton, E. (2006). Preserving Electronic Scholarly Journals: Portico. Ariadne (47). http://www.ariadne.ac.uk/issue47/fenton/intro.html.
5. McGovern, N. Y. (2007). A Digital Decade: Where Have We Been and Where Are We Going in Digital Preservation? RLG DigiNews. 11, (1). http://www.rlg.org/en/page.php?Page_ID=21033#article3.
6. Plumbe, W. (1964). The preservation of books in tropical and subtropical countries. London: Oxford University Press.
7. Priscilla, C. (2008). Repository to Repository Transfer of Enriched Archival Information Packages. D-Lib Magazine, 14 (11/12).
8. Ritschard, M. R. (1998). Technology replacement & avoiding obsolescence: is it possible? Proceedings of the 26th annual ACM SIGUCCS conference on User services, United States: Bloomington. Indiana. pp. 199 –207.
9. Universal Digital Library: (2010, February 22). http://www.ulib.org Retrieved.
10. U. S. Government Printing Office. Digital Preservation at the U. S. Government Printing Office (Version 2.0).

Pilgrimages, Religion and Domestic Tourism: Study of Varanasi

Dr. Shyju P J[1]

Overview-Domestic tourism is an important segment of tourism business of any nation. It is grossly underestimated because of logistic and absence of a proper information management system. In Indian context, domestic tourism plays a key role and huge inflow of domestic tourists can be seen at popular destinations. This paper is an attempt to understand the main thread of domestic tourism in India, i.e. pilgrimage tourism. Religious trips hold the lion market share of domestic tourism in Indian market. This paper discusses the coexistence of religion with tourism, its impacts (positive) at various levels and how it co exists in a plural community taking Varanasi as a case study.

Tourism plays a crucial role in the economic development of nations. According to Forbes Magazine, the growth of tourism sector will continue for another 20 years (Fuller, 2015). The report of World Travel and Tourism Council (2016) underlines that earning from tourism sector forms a substantial component of global trade. Tourism contributes to 4% of the share of India's export revenue in the year 2014. UNWTO reiterates the need of promoting sustainable development of tourism in *developing countries* and *least developed nations.* Various strategies have been designed to reach the benefits of tourism to the communities include tourism for all, pro-poor tourism, inclusive tourism etc. Tourism has substantial impact on developing economies (Ashley, Brian et.al, 2007). The diversity of tourism activities incorporated in tourism business makes tourism an economic branch with higher level of association and inter-connectivity (Bunghez, 2016). Domestic tourism throughout the world is a predominant but invisible portion of total tourism activity (Eijgelaar, Peeters, and Piket, 2008). Though domestic tourism contributes to a greater extent in development, international tourism dominate the horizon of tourism industry in general; one of the basic reasons for this is domestic tourism market is underestimated by many nations.

Tourist travelling for fun, leisure and entertainment possess the lion share of international tourism market. The same is applicable for domestic tourism in many countries western world but religious attachment and pilgrimages motivate a large number of people in Asia. A pilgrimage is a journey to a place, which is associated with a faith. It come out of belief and devotion (Shyju, Rana and Bhatt, 2015). Religious tourism industry is largely centred on devotion-based informal activities in pilgrimage centres (UNWTO, 2011). Religion acts as a strong motivator of tourism and race or wealth hardly matters to it. The social significance of pilgrimage tourism

[1] Asst. Professor-Tourism Management, Dept. of History of Art, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Email: shyju@bhu.ac.in, pjshyju@gmail.com

is of paramount of importance in India. An estimate of UNWTO reports that 300-330 million pilgrims visit world's key religious sites (Vijayanad, S. 2012). It is also found that during the vacations, large number of tourists move towards the nearby destinations. The concept of 'staycations' are getting wide popularity, which will increase the domestic tourism growth. The present study is an attempt to connect pilgrimages and domestic tourism. The study is an attempt to define the actors and networks involved in the consumption pattern of domestic tourism in Varanasi.

Objectives of the study

1. To examine the interaction of pilgrimage, religion and tourism.
2. To explain the positive impacts of religious tourism at a destination.
3. To understand the coexistence of religious trips and domestic tourism in Varanasi.

Methodology

The study uses qualitative research methods. Observation of tourists in various places of worship helped the researcher to arrive conclusions on various perspectives such as religious faith and pilgrimages, behavioral pattern of pilgrims at religious sites. Tourist destination consists of a number of attractions. The tourist's movement results in several interactions which further translate in to a wider group of networks. The first part of the study deals with pilgrimage as religious tourism whereas the second part deals with its pattern of religious tourism in Varanasi. The study mainly analyses the positive impacts of religious tourism with special reference to Varanasi.

Religious trips and tourism; continuum or contrast

"A pilgrimage is not a vacation; It is a transformational journey during which significant change take place**"** (Weiderkehr, 2001). This statement is often debated in many academic platforms. There is a strong association between history and religion. Faith in region has been one of the reasons behind many travelers. It has been noted that religious tourism is one of the oldest form of tourism in the world. (Gedecho, E K., 2014). Visit to a holy shrine is the requirement of many religions (Shackley, 2002). Religious tourism act as the backbone of Israel's economy (Sizer, 1999). Religious tourism plays a vital role in the domestic tourism. Religious tourism is very prone to negative social impacts such as violation of rules (Rinshede, 1992). Religion influences political structures (Green, 2003). China counted some 1.21 billion domestic tourists in 2005, India saw 309 million domestic tourist arrivals in 2003. Total tourism numbers are grossly underestimated due to the complexity of estimating the domestic tourist movements in particular (Eijgelaar, Peeters and Piket 2008). According to Turnbull (1981) pilgrims gain a sense of belongingness to a religious place. In the words of Turner & Turner (1978) **"a tourist is a half pilgrim and a pilgrim is a half tourist**". Mac Cannel (1990) opposed the view and stated

that tourism and religion can’t go together. Smith (1992) proposed that tourist and pilgrims are distinct actors situated at opposite ends. A religious journey can be seen as a form of tourism that expresses the abiding memory of history (Anna Trono, 2015). Historical meaning and their importance often is recognized as an outstanding universal value (Irimias, A., Mitev, A., Michalko G., 2016).

Pilgrimage can be defined as a serious trip to a place of religious importance. The fundamental motive of a pilgrim is to complete the trip while facing hardships enroute. It tests the endurance level of participants in some trips which take long time to complete by walk in extreme terrains. A religious trip involves less level of commitment comparing to a dedicated pilgrimage though there are no clear parameters that distinguish it. Smith’s model classifies a pilgrim to a pious pilgrim to a secular tourist. Looking at various pilgrimage sites and observing the pattern of pilgrim movements in religious sites, it can be concluded that the extent of faith of an individual in a religion also results in classification.

Domestic Tourism in India - Scope and Types

Looking at the Indian tourism perspective, domestic tourist movements have seen a steady upward trend in the past couple of years. Considering the magnitude of domestic tourism, the Government of India has taken up several initiatives to develop tourist infrastructure in the existing tourist circuits. Several new tourist circuits also have been introduced in this pattern. There are several reasons for the emergence of urban middle class who became the active consumers of domestic tourism in India (Kumar, N. 2008). The compound annual growth rate (CAGR) of domestic tourist visits to all States and the Union Territories from 2010 to 2014 being 12.92%, which shows the consistency in growth over the past few years (Kumar, N.R, 2016). A study conducted by ASSOCHAM says that domestic tourism industry registered a growth of 23.5% increase over monsoon season in 2015 as compared to last year (Khosla, V. 2015). The ongoing trends in tourism market signal a better future in Indian tourism scenario with reference to domestic tourism.

The Report of Ministry of Tourism presents that trip with leading purpose holidaying recreation, leisure and entertainment take place in summer time (May & June) whereas pilgrimages and religious trips take place in July and shopping trips were done in December. The survey also shows that majority of domestic tourists prefer surface transport and a meager share use flights to complete the trip (NSS, 2014-15). It is evident from the report of Ministry of Tourism published in 2002 and 2015 that the average length of stay of domestic tourists, average expenditure at destinations has been changed. FICCI (2012) identified four major components of domestic tourism which include greater cognitive connect, shorter trips and nearer destinations, rail road centric, budget hotel/stay requirements. The report of FICCI also highlights the overall change in the profiles of the visitors has been noticed in

the form of socio-educational background of tourists, spending nature and improved cross cultural exchanges.

India, being a population of 1.25 billion occupies a higher position in international domestic tourism market. The growing number of weekenders has been another reason for growth of domestic tourism which also reflects in a qualitative improvement in tourist infrastructure at main getaway destinations. Domestic tourism movements are largely fall in to religious trips, which also include the leisure component. For many household, an annual trip means a lot hence, the trip also include important shrines enroute. The market segments of domestic tourism consist of weekenders, vacationers, adventure seekers, institutional tours, incentive tours, business trips, LTC tours, wanderers and researchers etc.

Varanasi-Historical & Religious Importance

Kashi was one of the important kingdoms in the ancient janapadas during the post vedic period (Singh, 2012&Jaiswal, V. 2015). This place witnessed changes of political power from the period of Lord Buddha to Mughal period, rather a deterioration of its position in power. During this period, though the political power switched through hands, the religious importance of Kashi remain unchallenged by any other place in India. Varanasi is a “crossing-over” place, where heaven and earth meet, providing access for humans to the gods (Singh, 1987). Perceived image of Kashi is a religious centre for Hindu pilgrims (Shyju, 2016)**.** The religious scape of Varanasi include followers of different religions. The landscape is mixed with traditional living and modernity. Several structures which resembles the past in the old city of Varanasi represent the heritage of this place whereas the lifestyle of people living in this area represents the religious heritage of Varanasi.

Pattern of Religious Tourism in Varanasi

Buddhism

For a Buddhist pilgrim a visit to India is often incomplete if the trip doesn’t include Sarnath. Pilgrims often stay at the monasteries and hotels in the city. But it is also found many pilgrim groups make a short visit to the city which include boating in River Ganges.

Jainism

According to Jainism, four Jain thirthankars born here and 24th Thirthankar Mahavira visited Varanasi in the 42 year of his teaching (Kutluturk, 2013). Jain pilgrims visit main jain temples located in the city (Bhelupur, Bhadaini, Naria and Sarnath).

Sikhism

Sikh pilgrims visit the Gurudwara in the memory of the visit of Guru Nanak to the city other than the regular devotees.

Hinduism

Every inch of Kashi is a holy place for hindu pilgrims. The spatial distribution of Varanasi is dotted by a number of temples, kunds and pilgrimage routes. Changes in seasons bring change in the pattern of visit to the city, but the nucleus of the trip always remains as the KashiVishwanath Temple. In addition to visiting temples and doing rituals, the worshipping place is scattered over a number of places. Unlike other religions, the main worshipping place centered on the shrines, Kashi is a difference which includes movements, activities and offerings. Here another emerging picture is the close connection of river ganges, the ghats, and the shrines. This trios act as an integral part of any pilgrim's trip plan irrespective of the age, gender or other nationalities. Singh (1993,1994,2002) explained the following yatrs taken up by pilgrims in Varanasi.

- Brihat Panchakroshi Yatra: Covering the periphery of Kashi Kshetra (296 KM)
- Panchakroshi: (88.6 KM)
- Nagar Pradakshina (25 KM)
- Avimukta (Avimukta kshetra)
- Antargriha from Manikarnika to Vishveshvara

In addition to the above, pilgrims throngs up in Varanasi during the special occasions as mentioned in the Hindu Calendar such as eclipse, kumbh melas, purnimas etc. These visits can be better explained as the fluid and fire models of tourist flows (Johanson). The regular movement of visitors have been controlled by their purpose of visit such as darshan, pindadan, etc. Some of the pilgrims remains at the temples for hours to fulfill their wishes. The chanting of mantras (prayers) and slokas add energy to the religious environment. The excitement of pilgrims boost up during these occasions while they come across the huge crowd moving side by side with them who came for the same purpose.

Islam & Christianity

Pilgrims visit specific shrines located in the city. Comparing to other religions, the proportion of pilgrims visit shrines of Islam and Christianity are very minimal.

During the interactions with pilgrims, it is found that devotion play as an energy which drives the pilgrim to visit Varanasi. The social and economic barriers hardly stop their motive. The visit also include several interactions at the local level for many purposes such as performing rituals, shopping, etc. The following diagramme demonstrate the core components and which act as the actors in the networks.

Spatial distribution of pilgrimage and pilgrim's interactions

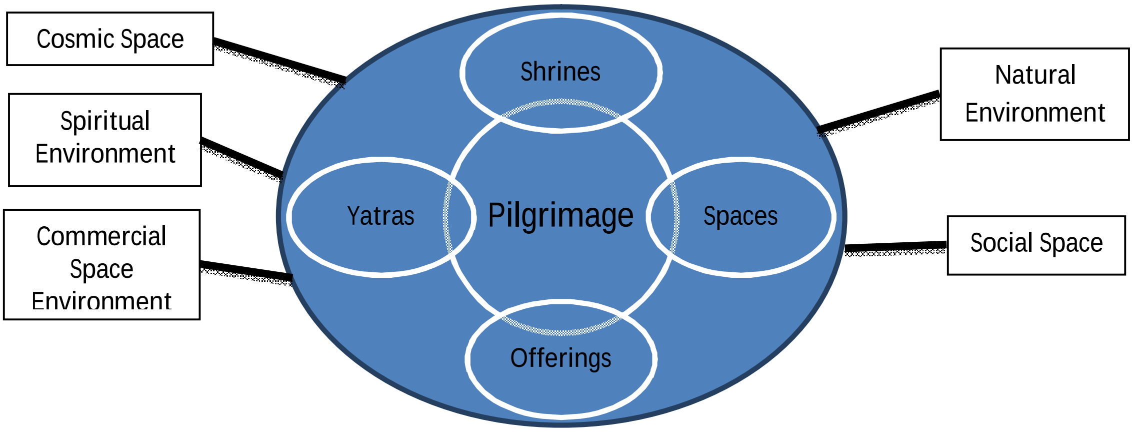

Cosmic Space: Kashi Kshetra (Singh, 1993**), Spiritual Environment:** Inner feeling of moksha, blessings of ancestors, Gods and Goddesses. **Natural Environment**: River, River Banks and Ghats, The anandvana (as mentioned in purans, The green patch available at present. **Social Space**: The interactive environment of hosts and guests. **Commercial Space**: Trade and commerce generated out of tourism.

Pilgrimage, Religious tourism and & its impacts

Pilgrimage (theerthadan) is a very ancient phenomenon which was integral part of the life. According to the vedic texts, pilgrimage to holy places yields punya. Several types of theerthadans were performed and even today some of these pilgrimages remain in its original form. Pilgrims believed that travelling to a holy shrine fulfil their visit purpose and it was taken up in the background of sacrifices (walk on barefoot, chanting prayers etc). Yatras (Religious) which last for several days in extreme weather conditions and rough terrains remained as an important part of the religious sphere of people. The religious scape of a place slowly developed as a major centre of attraction in the later years. Several commercial establishments added new component as trade. The trade activity aimed at the pilgrims who visit the places. Seasonal migration of traders to the pilgrimage routes assured them a good earning. Essential supplies and facilities for pilgrims slowly changed way to the pilgrim resort. Affordable pilgrims preferred paid services and better comfort, but the regular visitors were satisfied with the minimal facilities. In due course of time, the business phenomenon dominated the religious landscape which resulted in numerous ways economically to the local society. The economic effect of the pilgrimage is deconstructed below.

At the religious site

Direct Effect	Indirect Effect	Induced Effect
At Shrines The care takers, priests etc	Meeting daily expenses in various ways Eg. Milk, food, clothing etc.	Suppliers of vegetables and other products producers of essential commodities
Shops around the shrines Materials required for worship	Payment to wholesalers Who provide the materials Flower sellers Prasad sellers etc.	Farmers, producers of essential materials required to complete the ritual or worship

At the location

Direct Effect	Indirect Effect	Induced Effect
At the location Hospitality establishments (Boarding, lodging etc.) Room rent, food costs	Salary to the staff which moves to their families to meet daily expenses.	Money earned from the second line is spend again for various expenses
Local travel arrangements Expenses in the form of taxi charges reach the travel agents	Beneficiaries : Drivers and local guides	Reaches again back to the local people who live in the vicinity of the shrine

Other nature of spending at religious places

Astologers	Craft makers	Technicians
Entertainers	Book sellers	Shopping centres
Bilingual Guides	Astrologists etc.	Writers
Hospitals	Educationists	Advertisers

The economic impact of religious tourism is higher than that of other segments of domestic tourism because the number of pilgrims visit a shrine. 34,36,779 pilgrims visited Baidyanath Dham, Devghar in Jharkand during the Saavan (DainikJagaran, 18 August, 2016).

Discussions

It has been found from the observation of pilgrims at various shrines at different occasions that faith becomes a means of togetherness in such a way that religion brings together people of many regions to one place. i.e., culmination of faith. Though the faith is expressed in different ways, (chantings in different languages in the shrines) the meaning it gives is harmony among various sections of people. The principle of peace and harmony is one of the outcomes of religious tourism. While walking in the famous alleys of the city of Varanasi, which connects major worshipping places, one can hear conversations in multiple languages which reflects the plurality of India. Assimilation of these diversities, coexistence of people of different geographical background is one of the major advantage of a religious tourism.

Attending the rituals and traditions also enrich the self-esteem factors, which lead to the next stage of self fulfilment. It has been noted in the previous studies that

age, education or physical fitness don't create much hurdles in the way of a devoted pilgrim. Visiting a shrine is not just for the sake of personal satisfaction but it rather lead to happiness and internal healing which is the paramount of importance of the life of a ny individual. Hence, it can be said that religious tourism reinforces the life of pilgrims with an eternal bliss and re-orienting oneself from the materialistic life style and mundane of every day. Here, the hypothetical conclusion is religious tourism is a means to higher levels of spirituality irrespective of the social background of the pilgrim. Religious shrines in Varanasi proves this factor. In the bee line of visitors to Kashi Vishwanath Temple, a single glance of the Shiv Linga is considered as a life time reward for many pilgrims, who stand in the log que for hours to have a darshan irrespective of extreme weather conditions.

Religious tourism also spread the message of peace and harmony among various religious groups. When a city host people of different religious background there are higher chances of clashes between groups. Varanasi has proved that social harmony is the base of humanity and religion is an instrument of peace. Bismilla Khan used to perform shehnai in temples and ghats. People visit Varanasi often astonish to see that people of all religious backgrounds live peacefully. The world can take the example of Varanasi as a centre of religious tolerance where people of various communities work each other or live nearby. Regular tourists and pilgrims carry this message of coexistence and it is another advantage of religious tourism in Varanasi.

The intensity of faith is often visible through the rituals conducted for the cause of society. Rituals are performed if there is a drought, flood, or other disasters, which occurs in different place of the world. It also happens when an Indian sports person/ team perform in international or global events. It is worth to mention that poojas were conducted during the recent floods to calm River Ganges, which was flowing above danger mark for several days and was causing lot of problems to the life of people who live on the embankment of the river. Here the religion act as a messenger of moral support to the people which inspires the confidence and inner strength of believers.

The next aspect is the connection of religion and history. Religion result in the recreation of history, which further leads to the bondage of each one another. Historical monuments and remains are the symbols of the past. The route of faith is also some way connected with historical incidents. For example, the visit of Lord Buddha to Sarnath (then Rishipatan) led to the beginning of a new faith i.e. Buddhism. The successive years after the Maha Parinirvana of Lord Budhha also changed the landscape of Sarnath, which became an important land mark in the later years as a holy place. During the rule of dynasties like Mauryas, Sungas and Guptas, Sarnath had remained its importance. Stupas and monasteries came up which later became a symbol of Buddhism continued to attract pilgrims. The pilgrimage of Lord

Buddha to Risipatan to preach the noble principles (here pilgrimage means identification of a suitable place (space) and to share the enlighted one's knowledge. Thousands of Buddhist pilgrims visit Sarnath every year, remember the preaching's of Lord Buddha at Sarnath. The historical remains are visited by these pilgrims. Religious tourism here acts as a major cause of preservation of monuments.

Pilgrimage need full involvement of the devotees. In a way, it adds the responsibility of pilgrims to protect the shrine and maintain the holiness of the area. This adds consciousness, of people living near by the shrine as well. This is translated to the administrators in the form of responsibility. The continuum of development in the form of additional amenities to facilitate pilgrims improvise the quality of experience without changing the original nature of the shrine. Tourism adds the demand for better amenities. Pilgrimage Rejuvenation and Spiritual Augmentation Drive of Government of India (PRASAD) would create a long term effect in increase in the religious shrines. The process of development overtakes the traditional setting of a place of worship according to the changes of time and the demands of the people. Hence it can be concluded that religious tourism in a way instrument the cause of development. Several ongoing government schemes in Varanasi are aimed to give a better experience to pilgrims and tourists. In the recent times, there is an overall improvement in facilities along with a gradual increase of tourist to Varanasi.

Conclusion

The article discussed the nature and impact of religious tourism in length. It can be said that the upward trend of religious tourism in India can impact in the spiritual sphere as well. Another important point to note is several interconnected economic activities are happening along with religious tourism which is benefitted by a large number of people across a wide section of people which can't be ignored at any cost. The livelihood of several thousands of people depend on the pilgrim movements across India especially states such as Jammu and Kashmir (Amrantah Yatra, Kheer Bhavani Festival, Maa Vasihsno Devi Temple, Katra), Punjab (Punjab), Uttarakhand (Char Dham), Uttar Pradesh (Mathura, Varanasi, Allahabad, Ayodya, Chitrakoot), Maharashtra (Shirdi), Tamil Nadu (Rameshwaram, Madurai) and Andhra Pradesh (Tirupati) to name a few. It can be concluded that pilgrimage is a term used in the present context is in a broader perspective which also include a number of other factors that connects the community, environment and the overall upliftment of quality of life.

Reference

1. Anna, Trono. (2015). Politics, Policy and the Practice of Religious Tourism. (Ed), Raza, R &., Griffin, K. in Religious Tourism and Pilgrimage Management. Massachuset: Cabi.

2. Ashley, C., & Brine, P., Lehr, A. & Wilde, H. (2007). *The Role of the Tourism Sector in Expanding Economic Opportunity*. Massachusetts: Harward.
3. Bunghez, C. L. (2016). The importance of tourism to a destinations economy. *Journal of Eastern Europe Research in Business and Economics*. IBIMA Publishing accessed from. http://ibima.net/articles/JEERBE/2016/143495/143495.pdf
4. Domestic Tourism, (2012). Evolution, Trends and Growth FICCI.
5. Eke. Eijgelaar., & Paul, Peeters., and Pieter, Piket. (2008, November, 24 – 26). *Domestic and International Tourism in a Globalized World*. Research in Progress Paper presented at the International Conference "Ever the twain shall meet - relating international and domestic tourism" of Research Committee RC50 *International Tourism*. International Sociological Association Jaipur: Rajasthan. India.
6. Fuller, Ed. (2015). *Its all good news from the world's travel and amp; Tourism industry for the next 20 years,* Forbes Asia accessed from http://www.forbes.com/sites/edfuller/2015/05/06/its-all-good-news-from-the-worlds-travel-tourism-industry-for-the-next-20-years/#308a494b3a3e.
7. Gedecho, E. K. (2014). Challenges of Religious Tourism Development. The Case of Gishen Mariam. Ethiopia. *American Journal of Tourism Research (*Vol. 3-2), pp. 42-57.
8. Irimias, A., & Mitev, A., Michalko, G. (2016). *Demographic Characteristics influencing religious tourism behavior, evidence from a Central Eastern European country*", accessed from http://arrow.dit.ie/ijrtp/vol4/iss4/3.
9. Jayaswal, V. (2015). *The Buddhist Landscape of Varanasi*. New Delhi: The Aryan Books International.
10. Khosla, V. (2015, Aug.5). *Domestic Tourism Industry Registers 23.5% growth*. The Economic Times.
11. Kumar N. R. (2016). *Significance of Domestic Tourism in India as a Major Revenue Generator*. Asia Pacific Journal of Research. pp. 6-9.
12. Kumar, N. (2008). Significance of domestic tourism. Express Travel World.
13. Kutlutürk, C. (2013). Significance of Varanasi in terms of Indian religions. *IOSR Journal of Humanities And Social Science*. (Vol.10), (2). pp. 36-40.
14. Ministry of Tourism, (2012). Government of India Report.
15. National Sample Survey, (2015). Government of India Report.
16. Razaq R., & Griffin, K. (2015). *Religious Tourism and Pilgrimage Management- An International Perspective*. Oxford: Cabi.
17. Rinschede, G. (1992). Form of Religious Tourism. *Annals of Tourism Research. (19)*, pp. 51-67.
18. Shackley, M. (2002). Space, sanctity and service; the English Cathedral as heteropia. *International Journal of Tourism Research*. 4 (5), pp. 345-352.
19. Shyju, P. J. (2016). Kashi, Benaras and Varanasi. A relook in to the historicity. heritage and preservation issues. *Tourism Spectrum*. (Vol. 4. Issue 1).
20. Shyju, P. J., & Rana, P. S., Bhatt, Iqbal. (2015). *Exploring destination experience of Buddhist Pilgrims through Important Performance Analysis*. In Bansal, S. P., & Walia, Sandeep Bharti Publications.

21. Singh, Rana P. B. (1993). Varanasi: the Pilgrimage Mandala Geomantic Map and Cosmic Numbers in *Varanasi. Cosmic Order. Sacred Cit. Hindu Traditions*. Edited by Singh, Rana. P. B. Varanasi: Tara Book Agency. pp.37-64.
22. Singh, Rana. P. B (1994). Time and Hindu Rituals in Varanasi: a Study of Sacrality and Cycles in *Pilgrimage Studies: Text and Context*. Edited by Gopal, L., & Dubey, D. P. Allahabad: The Society of Pilgrimage Studies. pp. 67-72.
23. Singh, Rana. P. B (2002). *Towards the Pilgrimage Archetype. The Panchakroshi Yatra of Banaras.* Varanasi: Indica Books.
24. Singh, Rana P. B. (1987). The Pilgrimage Mandala of Varanasi (Kashi). *National Geographical Journal of India* 33. pp. 493-524.
25. Sizer, S. R. (1999). The Ethical Challenges of Managing Pilgrimages to the Holy Land. *International Journal of Contemporary Hospitality Management*, 11 (2-3), pp. 85-90.
26. Smith, V. (1981) . *Quest in quest. Paper at Conference on Pilgrimage*: The Human Quest. University of Pittsburgh.
27. Turnbull, C. (1981). A Pilgrimage in India, *Natural History*. In Tej Vir Singh. Challenges in Tourism Research. Channel View Publications. 2015.
28. UNWTO, (2011). Religious Tourism in Asia and the Pacific. Madrid.
29. Vijayanad, S. (2012). Socio Economic Impacts in Pilgrimage Tourism, *International Journal of Multi Disciplinary Research*, (Vol. 2, Issue 1), pp.329-343.
30. Wiederkehr, M. (2001). *Behold Your Life: A Pilgrimage Through Your Memories*. Paris: Ave Maria Press,
31. WTTC, (2016). Bench Mark Report, Trade Summary.

ISSN : 2395-7468

Writing Research Proposal

Sisir Basu[1]

Introduction

The structure of the formal education system is well laid out. It begins with primary education followed by the tertiary and higher education. It ends with the university education culminating with a doctoral degree. Our focus in this article is university education.

At the university, the focus is on creating knowledge and disseminating the same through formal channels of communication. Creation of knowledge is at the core of university education which may include also verifying the past knowledge with an intention to modify the same if new findings point us to that direction. The way to do this is to conduct research. Those who enter the arena of higher education or university, it is assumed that they would commit themselves to creation and dissemination of knowledge. Hence, conducting research becomes a paramount important activity and it is a lifelong one. This must be pursued with passion, particularly for those who enter into an academic institution; it must be pursued with love and care.

In this brief article, an attempt is being made to provide a structure to put one's thought about proposing a research study. This is meant for the novice in academic profession or for those who are in their doctoral studies.

I

Basic Characteristics of a Research Proposal

In this section some of the basic characteristics of a research proposal will be discussed. One needs to have a good understanding about the nature of such a proposal and thus follow the same as and when an opportunity comes for one to draft a research proposal.

i) Clarity of Thought

A research proposal is a blue print of what one intends to do in future enumerated step by step. It is like an architect's design for future edifice. Therefore, it has to be thought of very clearly. Before one puts his/ her thoughts on paper, one needs to think and envision the steps logically. Therefore, the proposal should be clearly written. Clarity of thought becomes primary for a research proposal.

[1] Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Banaras Hindu University, Varanasi.

ii) ***Organized***

As stated in the previous paragraph, for thinking about the problem that one intends to investigate, one must take time. It should not be done in a hurry. One must allow the idea the required gestation time to mature before it is put on paper. The gestation period will allow the idea to develop fully and concretely. One would find that a matured proposal flows logically.

iii) ***Well Planned***

Once, a researcher conceives an idea and allows the required gestation period to develop fully, he/she needs to design a plan for execution. How to proceed to realize the goals set for the conceived idea? A research study is somewhat like a war. Before, one goes to a war, one needs to think and analyze the strengths and weaknesses of the enemy; the weaponry one must deploy and the cost one needs to pay for the execution of the war plan. Therefore, planning is a must and it must be a meticulous one. The proposal must reflect this tight planning.

II

In the previous section, we have had a discussion with regard to the characteristics of a good proposal. It should be a compact and a well written one. It must be written in a simple language describing the plan of the research; the problem which is to be investigated; and the procedure that one needs to follow to conduct the research. In this section, we shall discuss the components that a research proposal should include to give it a complete shape. Let us discuss these components one by one.

A. The Title

The title of a research study or a proposal is its face. A well written title reflects three aspects of a research project. These are: i) The context; ii) the problem; and iii) the major variables. Let us discuss these one by one.

The Context: A research study does not exist in a vacuum. It happens in a socio-cultural and geographical milieu. The title tells where and in which environment the study has taken place. For example: A Study on the Maternal and Infant health Condition in the Eastern Uttar Pradesh Located in India. This title tells us that the study has taken place in the eastern Uttar Pradesh located in India. This geographical region is the context. The context may vary from study to study. It may not always be a geographical location.

The Problem: The title also clearly states that the research study investigates the maternal and infant health condition. Therefore the problem is about health of a particular section of a population in the eastern Uttar Pradesh.

The Major Variables: The main elements of the study are the health of the infants and mothers. These elements are called variables. They are called variables because they vary at different context at different times.

Therefore, a research title reflects these three broad elements of study. The title gives the reader an idea about what the study is all about and where it has taken place. Sometimes it also tells the nature of the study like, whether it is based on primary data or dependent on secondary data. A research title is usually long, sometimes running to 2 – 3 lines. It should never be ambiguous like the title of a novel, drama or a poem or for that matter of a book, even a text book. The research title should be clear and focused.

B. Introduction

The introduction component of a research study has a purpose. The purpose is to lay out the study clearly. It has again three broad parts. First, it states very clearly what is the problem that is being investigated. Secondly, the introduction describes clearly the reasons for choosing the problem to investigate. It has to be contextualized and reasons for the need for such a study are to be stated. Thirdly, the introduction should discuss about how much is known about the problem or the issue that is being investigated. Therefore, the researcher must do some background study. The selection of such a problem for investigation must have a background. It also must state the latest status about the problem being investigated.

C. The Statement of the Research Problem

Many times the research scholars may not have a clear idea with regard to the research problem and which aspect of the problem is to be investigated. Thereby, they get stuck at the beginning of the research project itself. It takes an effort and time to crystallize the problem in mind and express the same in simple language. One needs to work on it. How well the thinking about the problem has been done by the researcher is reflected in the Statement of the Problem. It is generally written in about 80 – 100 words.

D. The Significance/ Importance of the Study

The research study that is undertaken by the researcher must add value to the current knowledge of the subject matter; it may add a new way to look at the problem; it may add a new dimension to the discipline or the subject being investigated. A research study must benefit the researcher, or the society or the subject matter. Therefore, the proposal must indicate such a benefit at the proposal level itself. It is off course not possible to be exact with the quality and the quantity of the benefit, but the direction of the

benefit could be pointed out. Hence the significance of the study and importance of the research need to be emphasized.

E. The Aim

The proposal must contain the aim of the study. It is simply the answer to the question: What is to be achieved by conducting this study? It is usually to find a solution to a problem or an answer to a question or to get something. The aim is a brief general statement about the purpose of the study.

F. The Objectives

The logical flow from aim of a proposal is the objectives. The objectives are the specific issues that the researcher would like to find out from the specific context in order to arrive at the aim of the study. The objectives use the words that signify 'doing', such as *find out, determine, list down and map out*. The researchers are discouraged to use such as *to know, to understand, to think* as these would not yield data. Therefore, if aim is considered to be a wall, the objects are then to be compared with the bricks building the wall.

The aim and objectives are the driving engines of a research study. A researcher has to spend a considerable time to sharpen and finesse the aim and the objectives.

G. Methodology

Methodology is simply the procedure of gathering and analyzing the data. The methodology includes many elements to help in collecting data and analyze the same logically. It has to be emphasized that a good research proposal must include the process and the method that the study will adopt and follow. The process must be clearly sated step by step. Again, a good section on methodology in a research proposal is like a blue print. It reflects the clarity of thought and sound understanding about the procedure the researcher would adopt to conduct the study. A sound and thorough methodology will always yield a complete and credible result. The quality and soundness of a proposal is defined by the methodology section.
Methodology is simply the procedure of gathering and analyzing data. The methodology includes many elements to help in collecting data and analyze the same logically. Some of these are stated below.

Design:

Design is the first and most crucial element in the methodology. It is directed by the aim and objectives of the study. If a study is investigating some events, personalities, regimes, etc., then the design of the study generally is of historical. If one studies films, texts, visuals and photographs,

etc., the design will either be content analysis or semiotic analysis depending again on the focus and the elements of the study. If one needs primary fresh data to meet the objectives of the study, one may then need to adopt survey design. Therefore, designs emanate from the stated objectives, and the objectives flow from the title and introduction/ rationale of the study. Each design has its own procedure and they are unique like in a war depending on the turf, one confronts the enemy in land, sea and air. Each has its own strategy and design. The planes will not work in the sea, and the ships will not work in land or air.

Elements of Study

Depending on the design, the elements of the study will be different from study to stud . These elements are called variables, unit of analysis, etc. These are all concepts, values and elements that are studied in a research study.

Measurement of Elements

In a research proposal, the elements that are studied are usually weighed. These may be measured qualitatively with a scale designed for the purpose like, good – satisfactory – bad. If the variables are to be measured quantitatively then an appropriate quantitative scale could be suggested.

Instruments/Tools

Depending on the design and procedure of the research study, the researcher also needs to suggest or design instruments / tool to collect data. These may be questionnaire, schedule, structured questions for interview, code sheet, etc.

Interviewers/ Enumerators/ Research Assistants

Again depending on the nature and design of the study, the research scholars may need assistants to collect, collate and analyze data. They are to be oriented about the study and trained to collect data. These will have to be mentioned in the proposal.

Data Gathering and Time Schedule

The proposal must clearly mention the place where from data are to be collected. The time duration and season in which data could be gathered from the places are to be mentioned. The proposal should also mention the procedure of collecting data.

Tentative Work Schedule and the Budget

Many times the researchers do not pay attention to the details of the activities, duration, time frame, etc. But these are essential for a sound plan and follow through. Like one must not go out for data collection in summer

or during rainy season. One will not be successful in collecting data properly. The proposal must list down all the activities that the researcher will have to undertake for data collection. The time frame must be included in the proposal as this will work as a guideline for the researcher to complete the task in time.

Once these activities are stated, budget making becomes a lot easy. The funding agency will always pay attention to this. The budget is always done comprehensively if all such activities are mentioned in detail. A credible budget comes from a good planning.

Concept Mapping

Since a lot many details are require to prepare a holistic research proposal, one needs to acquire skills to record these. One simple way to do this is to employ *concept mapping* method. Concept mapping is done by brain storming and putting all the ideas that comes to one's mind. These ideas are put on a piece of paper. Once this is done, similar ideas are bunched together under one category and others are put under other categories. Thus, we would find out that for problem for investigation several elements/ ideas will surface. Once these are bunched under several thematic headings, one can get several themes or objectives to work on and thus a comprehensive proposal could be written down with the objectives, and variables clearly mentioned (found from concept mapping). Concept mapping also help in writing term papers, essays and articles.

Conclusions

A good research proposal requires time and persuasion. One cannot devote time and attention for such work without being passionate about it. Research and academic work require passion. Therefore, a researcher must find out whether or not he/she has passion for research, reading and writing. If one has it, then this kind of activity will be a joyful one. If not, then such work will become burdensome and bring bitterness in life and profession.

References:

- Klaus, Jensen. Bruhn. (2005). *A hand Book of Media and Communication Research – Qualitative and Quantitative Methodology*. (ed.), London: Routledge.

The Environmental Appraisal of OOH Advertising Industry in India

Dr. Anurag Dave[1]

Introduction

Any Industry or organization does not exist in vacuum. Each exists within a complex network of environmental forces. Industry or organization interact and affected by the environment in which they function. Therefore, strategic choice for better performance should be consistent with the environmental factors. The OOH advertising industry in India is passing through significant changes. OOH advertising is getting prominence in media planning for marketing and branding of all kind of products and services. The success of OOH advertising industry in India depends upon how strategically industry interacts with its environment. The present study is an attempt carry out an environment appraisal of the OOH advertising industry in India by SWOT analysis technique.

Objective of study

Outdoor advertising is probably the oldest form of advertising. One can trace its linage back to the days of cave dwellers. The Egyptians used it as early as 5,000 years ago when employed a tall stone obelisk to publicize laws and treaties (Belch & Belch). Modern outdoor advertising dates back to 1796 when the invention of lithographic process made possible to print illustrated posters. Traditionally Outdoor Advertising has been synonymous to billboards and use of certain street furniture for advertising. Earlier, billboards, hoardings, bus shelters, etc, were part of Outdoor Advertising, but today, from good old fashioned billboards and hoardings, the business includes all formats of display of commercial messages consumed out-side the home or office. Over the past few years, the outdoor advertising industry has evolved into a rejuvenated media force to be reckoned with a slight change in description- a new name OOH (Out of Home). Out of Home media includes both outdoor and indoor locations like malls, shopping complex and other congregation points.

OOH industry is going strong and expected to have steady growth in India. The following chart shows the growth of OOH advertising industry in India in last 7 years. (see Figure-I pg. 74)

OOH advertising grew by 14% in the year 2014. The CAGR for the period of 2008-14 is 5.4 percent. The contribution of the OOH industry to the overall advertising pie is 5 percent (FICCI Frames 2014). Changes in consumer lifestyles and technology advancement are stimulating the growth of medium. But in a dynamic, competitive and fast changing media landscape in India, OOH advertising industry is

[1] Associate Professor, Department of Journalism and Mass Communication, B.H.U., Varanasi

facing several new challenges as well as new opportunities. The future prospects of OOH depend upon the strategic planning of the players in the industry. Environmental appraisal helps to analyze all the factors of industry environment that affects the business.

Method of Research

The SWOT analysis technique is used to discuss the overall strategic position of OOH advertising industry in India and its environment. A SWOT analysis (alternatively SWOT matrix) is a structured planning method used to evaluate the strengths, weaknesses, opportunities and threat involved in a project or in a business venture. A SWOT analysis can be carried out for a product, place, industry or person (Kazami 2008). The acronym ‘SWOT’ represents ‘Strength’, ‘Weakness’, ‘opportunities’ and ‘Threats’. Analysis involves specifying the industry objectives and identifies the internal and external factors that are favourable and unfavourable to achieve those aim and objectives. The SWOT analysis enables industry to identify both internal (Strength and Weakness) and external (Opportunities and Threats) influences. SOWT analysis helps industry to develop a strong business strategy and planning. It is about leveraging strengths, coming out and working on weaknesses, focusing on opportunities, and being aware of threats. Secondary data sources were used for the SWOT analysis. (see Figure-II pg. 74)

<u>Strength</u>

Cost effective medium without sacrificing reach

Undoubtedly, OOH has a wide coverage at cost effective manner. With a proper placement, a broad base of exposure is possible in markets, with both day and night presence. Out of Home Advertising provides broad coverage and outstanding reach. It is the most visible media exposed to everyone who goes outside of the home to work, study, shop or play. A 100 GRP showing (the percentage of duplicate audience exposed to an outdoor poster daily) could yield exposure to an equivalent of 100 percent of the market place daily, or 3000 GRP over month (Belch & Belch). This level of coverage is likely to yield high level of reach.

Generally purchase cycle for OOH is for 30-days periods, consumers are exposed to an advertising message several times, resulting in high level of frequency. OOH advertising is the only type of media that has constant exposure. It can't be thrown away or turned off. No other type of advertising allows your message to be displayed 24 hours a day, seven days a week. Therefore, OOH usually has very competitive CPM (Cost Per Mille) when compared to other mediums, like television, radio, newspapers and magazines. Out of Home is the most economical media today, since ad budget is always under strain. OOH mediums, like hoardings, outdoor mediums, activations, etc provides a halo to the advertising campaign, gave it bandwidth and most critically, helped in driving traffic constantly. Other Medias

being TV, radio, print and internet face a serious hindrance of advertising avoidance. The greater choice of content consumption has increased the probability of avoidance. Unlike this, outdoor is very difficult to consciously avoid. The target audience does not have to 'subscribe' to the medium in order to be reached by it. It is just there and present 24 x7.

New Innovations and Digital OOH

The advent of digital technologies has impacted the OOH advertising industry. The OOH advertising industry in India can be broadly divided into two main categories- Physical and Digital ad space. A physical OOH medium has been referred to any medium that is not connected with digital technology. The physical medium is the oldest and traditional medium of OOH advertising. It has the largest share in total OOH market in India. Digital medium is been referred to a medium which changes its content digitally in real time. The contribution of digital OOH is growing in total OOH advertising market. Growth of both physical and digital OOH medium can be attributed by the technology advancement and innovations. This is helping OOH advertising to provide customised solutions and meet out the needs of brand owners. New innovations like fleet graphics, train wraps or building wraps are creating a wow effect in OOH advertising. Glass faced branding, backlit stands, sampling kiosks, seat flap branding, floor graphics, banner and posters, staircase sticker branding and elevator branding are few of the other options available for OOH advertising.

Flexibility

OOH is very flexible advertising medium. Local, regional or even national advertising campaign may be covered by OOH. OOH provides three types of solutions to the clients. First is umbrella bombranding with the help of billboards, bus shelters and sky banners. Next comes experimental marketing where product bring close to the consumer and allow him to touch and feel it by ways of activation at malls and other places. Third is a customer contact zone where the brand meets the consumer at the retail level. With the help of OOH brand have moved with the audience as more people spend time in shopping, eating out and watching movies. Out of home is no longer just exposure it is also about engagement. While the world is moving from broadcasting to narrowcasting, the OOH advertising is working on Flexicasting (Out-of-Home Media (India) Pvt. Ltd). Flexicasting is the new media planning tool used by Out-of-Home advertising. It provides an opportunity to advertiser to slice & dice communication across various touch points. Flexicasting provides an advantage of getting as local as possible just like an outdoor but with the power and capability of Audio-Visual. This media planning tool helps advertisers to communicate differently to the different target audience depending on their product offering thus being very relevant for them. Flexicasting provides the ability / flexibility to advertisers to communicate to their audience through OOH as per their

choice of city, choice of location, choice of target audience, choice of creative and choice of language (Ishan Raina, 2009).

Attracting Organised Funding and Private Equity

OOH advertising in India is showing a steady growth in India and therefore attracting organised funding and private equity. Many media houses have started taking interest in OOH business. This is about providing 360^0 communication solutions to the advertisers. Of these out of home is one among other options such as activation, events, digital or other media. Therefore, Jagran Prakashan launched Jagran Engage, BCCL has Times OOH, DB Corp. Limited (Dainik Bhaskar Group) started DB Activation, Mid-Day came with a joint venture with Clear Channel. For most of the media owners it is a natural extension of their business. (see Table-1 pg. 75)

Weakness

Fragmentation of Market Place

Although organized players in OOH business are consolidating their positions and adopting a uniform approach but still OOH media business is extremely fragmented. There are a lot of small companies, mostly local, in the industry which set their own pricing and quality benchmarks. Only few players have national presence. This poses challenges in the development of standardised media assets, accountability to customers and variations in delivery standards across the industry. An estimated 2,500 hoardings (billboards) are owned by 800 small outfits, in Mumbai, the only city in India for which any figures is available (Kohli-Khandelkar, 2010). There are thousands of sites in India owned probably by an almost an equal number of firms or individuals. Absence of any entry barrier, lack of uniformity in regulations and very high competition in industry, leads to unauthorised sites. The result of fragmented market place is non focused investment that is critical for the development of the medium. The advertisers are looking for package of assets spread over the geography and this can be effectively achieved only through consolidation.

Lack of efficient matrix of performance effectiveness

The biggest weakness of OOH advertising industry in India is the lack of matrix for impact measurement. Any mature market should have measures in place because they have been at it for longer. Globally, developed markets like Europe and USA the quality infrastructure and consolidation within industry makes it easy to put matrix in place. There is a strong feeling that OOH advertising could not compete with television, radio and other mediums without having an effective yardsticks for performance. A robust methodology with a combination of survey of people movements and detailed quality classification of OOH properties is used for the matrix of measurement in these markets. Some are using Global Positioning System technology to measures the movement of audience expose to OOH media. Although

OOH industry in India is providing some kind of measurement of performance effectiveness, but the standard is far below than any other media. Except for an MRUC study that is being work upon, there are no other agency studies in the country that can back OOH and its reach (Menon, 2004). The absence of efficient matrix of performance effectiveness doesn't prevent the advertisers to use OOH as advertising medium but certainly this hinders the efforts to bring more advertisers on board, as many consider the quality measurement a pre requisite for advertising budget allocation. Globally it is proved that most market that spends on OOH media have usually doubled once the matrix fell in place (Kohli-Khandelkar, 2010). Without proper measurements industry is usually recipient of residual media spends of advertisers instead of separate budget allocation in their media planning. Absence of effective measurements keeps all stakeholders in industry unsatisfied. Media planners cannot show ROI to the advertisers, agencies find tough to justifying the cost leading to lower creative content and for media owner they could not justify the spends on to create assets and properties. Professional says that "there are three phases of Out-of-home advertising OOH! AHH! and OUCH! The OHH! Comes from how outdoor is moving to new formats. AHH! is for response to the improvement in technology, geographical targeting that is available. OUCH! Because of lack of qualitative and quantitative measures, professional organizations, no consistency is delivery execution, local legislative issues and increasing clutter. The way head is to take out this OUCH out of OOH"(Brand Reporter Special Report, 2008).

Inventory rationalization and utilization

India is a fast growing economy and focus is more on infrastructure development. This is leading the OOH companies to invest more in properties and creating new inventories. But inventory rationalization is compulsory. The 2009 downturn compiled the industry players to rethink their strategies and invest smartly. Optimize inventory utilization and cost rationalization is essential when competition is growing and margins are shrinking. Industry players should enter into the new geographies/ locations smartly only when rentals are stabilizing at realistic level and they are confident of generating revenues.

Unable to utilise Digital OOH up to its potential

When digital OOH came to India, there was a lot of interest for that. But digital OOH failed to make its mark. Issues related to maintenance of assets, availability of power and technology and regulatory hindrances have dampened the widespread usages of digital media (CII- PWC, 2012). Digital OOH has tremendous potential personalise, customise and run targeted campaigns. But it is not properly taped by the OOH companies in India. An interactive and robust marketing campaign can be run by the combination of digital OOH with other forms of media. In the west the major component of OOH advertising is digital. Proper use of technology and by

resolving the regulatory issues, OOH companies in India can utilize digital OOH up to its full potentials.

Lack of syndicated studies

OOH industry is in nascent stage in India. Industry is facing lack of syndicated studies that is important for nay industry to grow. Syndicated studies could address the questions like how to add value to sites to beat competition? How to increase clients' budget on outdoor? How to drive up revenue per site? Where to put up new sites? etc. This kind of studies helps in lobbying with government and identifies the opportunity areas. A national industrial body- The Indian Outdoor Advertising Association has been formed in year 2009. The IOAA is acting as a facilitator between local government bodies and the outdoor industry in order to create a friendly environment to solve various issues. In future as the industry will grew more syndicated studies will come up.

Role as supportive medium

OOH is considered as supportive medium to television, radio and print industry not as standalone medium. The focus of media planners is other advertising medium and they utilizing OOH advertising as an add-on medium. Although media planners have started keeping separate budget for OOH, but OOH advertising is used in combination with the other media to increase the impact of their campaign. Outdoor media have a limited message capability. Therefore, instead of delivering a complete message about the product or brand it serve as a reminder to reinforce the brand image for sustained brand awareness.

<u>Opportunities</u>

Growth in Urbanization and Real Estate

The strong economic growth of India, rising urbanization, growing middle class and high share of young population is resulted in high growth of real estate. Urbanization is growing at a faster rate in India. Over the last decade about 91 million people shifted to cities. As a result bout 2774 new cities developed during this time and now the total number of cities in India is 7975 (KPMG: Real Estate). The urbanization resulted in 51 million new houses in urban areas. The number of cities with more than one million populations increased from 35 to 53, of which 8 cities have a population of more than 5 million(KPMG: Real Estate). The growth in Information Technology and Information Technology Enables Services, Banking and Financial Services, Insurances and Manufacturing sectors resulted in significant demand for office space. Together these three sectors occupy the 75% of the 375 million square feet of total office space of India (KPMG: Real Estate). The growth of real estate is directly correlated with OOH industry. Growth of urbanization and real estate business is boosting the OOH industry. Hoardings and billboards contribute the major proportion of OOH advertising. Growth in real estate increases the

opportunities of hoardings and billboards. Growth in transportation is also increasing the scope of transit media. Almost all the large cities in India have launched the metro rail projects like Mumbai, Bengaluru, Chennai, Kolkata, Jaipur, Hyderabad and Ahmadabad. The world class airports are developing across the India. The terminal 3 at Indira Gandhi International Airport is the 8th largest terminal and 24th largest building in the world (KPMG, Real Estate). Several new world class airports in India have been developed since than at Mumbai, Bengaluru and Hyderabad. Apart from metro rail and airports government also souring money for modernization of highways, road projects, flyovers, etc. all these ensures a consistent supply of high quality advertising spaces thereby increasing the supply and demand of outdoor assets.

Growth of tier II and tier III cities

Currently the growth of OOH is tier-I town centric. Metros accounting for more than half of the total OOH market. But due to increased infrastructural development in tier-II and tier-III cities, industries players are expecting to more focus on these cities in future.

Tier- II cities (cities having population of 10-40 lakhs) are experiencing the highest growth rate in the number of households, growing 7.4% from 2005 to 2007. Tier- III cities (cities having population of 5-10 lakhs) witnessed 6.9% growth in the number of households for the same period, as compared to 6.6% growth rate in Tier-I cities (cities having population more than 40 lakhs). As a result it is estimated that by 2025 the combined population of Tier- II and Tier-III cities will be equal to the population of Tier-I cities (Marketing Whitebook, 2009). Even in upper socio-economic class, population growth is much higher in Tier-II and Tier- III towns (see Table-2 pg. 75).

The residents of the smaller towns are also having increased purchasing powers of the population. As per the study by Ernst and Young in March 2008, named '*The Dhoni Effect: Rise of Small Town India*', metros constitute only 30% of total consumption market. The study says that affluence level of towns such as Chandigarh, Ahmedabad, Jaipur, Lucknow, Indore and Pune have three-quarters or more of the affluence level of Mumbai (see Table-3 pg. 76).

Similarly, the paradigm that consumption power is concentrated in urban area is also gradually changing with the growth of middle and higher income households in rural India.

The growth of non-metro towns and rural market is gradually increasing the attention and spending of marketers and advertisers. As the advertising expenditure will grow in Tier-II and Tier- III cities and rural areas, the media will follow them.

To tap these markets, advertisers rely on the medium that carry local content in local languages.

OOH advertising is likely to grow at a faster rate in these cities and towns. With increasing in consumer spends, growth of retail and consumer boom, and intensified infrastructural development in these cities are developing a path for the growth of OOH in these cities in future. Recently Ministry of Urban Development, Government of India, announced to setup 100 smart cities in India. The 100 smart cities mission intends to promote adoption of smart solutions for efficient use of available assets, resources and infrastructure. These cities will be equipped with basic infrastructure. This opens a door of new opportunities for OOH industry in India. OOH players are looking for owning to the cost effectiveness of outdoor advertising in these cities and towns in terms of outdoor advertising.

Growth in Retail Sector

Retail sector is one of the fastest growing sectors in India. Major share in retail marketing is from traditional neighbourhood stores. But India's cities are witnessing a paradigm shift from traditional forms of retailing into a modern organized sector requiring international standard retail formats, providing massive opportunities for the property market. Changing consumer preferences, rapid real estate infrastructure development, easier access to credit, etc. are increasing the opportunities for retail business in India. The growth of female work force has resulted in the emergence of 'Resourceful Young Women'- a group that are at forefront of new India mores (Indian Retail, 2007). They are young, literate and resourceful; they place a heavy emphasis on their careers and they have a very self oriented motivation for spending. These resourceful women have a significant impact on retail. The look at mall shopping as a source of experience and pleasure not just about cost efficiency. India has emerged as one of the most attractive retail destination in the world. The CAGR (Cumulative Average Growth Rate) is expected (in value term) for retail is 13 percent for the period of 2013-19 (KPMG, Retail). The numbers of modern trade stores are expected to increase from 11192 in 2006 to 67100 by 2016. The numbers of supermarkets are expected to increase 500 in 2006 to 8500 by 2016 (KPMG, Retail). Total retail space supply in India is projected to grow from 5.3 million sq. ft. to 6.6 million sq. ft. over2013-15 (KPMG, Retail). As more people spend time shopping, eating out and watching movies- brand have moved with the audience and are looking for multiplex chains, retail outlets, supermarkets and malls as platforms for their promotional plans. Mall shopping in India is currently viewed as an 'experience', a leisure pursuit and a form of entertainment, which has encourage huge footfalls in new shopping malls. Mall spaces offers themselves to experiential marketing by way of kiosks, in the foyer, staircase, escalator or elevators branding, floor branding, shopping cars, digital screens, aisle

branding, pillars, changing and restrooms. The advertisers options are immense, and can go as far as one's imagination permits- from the floor to the ceiling.

Changing Life Style of the Consumers

Life style of the consumer in India is also changing dramatically. Youth segment and working women population is growing in India. Income is rising and purchasing power is increasing. Consumers are spending more time out of home in retail outlets, on roads, airports, metros, malls and restaurants. This is likely to give more avenues for the advertisers to target the audience while they are on the move. Expert says that consumers have around four hours a day, at an average, to indulge in activities like travelling, shopping, eating out or watching a film. With the consumers increasingly exercising ad avoidance making it increasingly difficult for advertisers to engage them, the importance of media at these consumption spaces is rising.

Emergence of New Sectors of Advertisers

Traditionally the major advertisers for the OOH advertising are Automobile companies, BFSI (Banking, Financial Services and Insurance) companies and FMCG companies. New sectors like Telecom, Real estate, Education, Television channels, Films, Apparel and Personal Accessories, and Jewellery are heavily spending on OOH advertising. Recently E-commerce is using OOH advertising in a big way (FICCI Frames, 2015). Brands like Hyundai, Tata, Intel, ING Vysa, Flipcart, Olex Tanishq, PC Jewellers and others have been prominent in using OOH advertising. Events are getting importance in our life. Events in general are likely to have a large outdoor component and there is likely to be convergence between event management and outdoor. Therefore the large scale outdoor companies may venture into event management or vice-versa in future. Advent of sporting leagues, growth of local specific events and even the biggest event of any democracy- elections (all kind of elections- central, state, local governing bodies) are emerging as big users of OOH advertising.

Threats

Talent crunch

Being talent driven, the media and entertainment sector relies on of its human capital for business success and differentiation. Talent acquisition is a challenge across the industry. For the progress of OOH in India fresh talent is constantly required. The nature of OOH medium increases the dependency over the innovations and new technology. OOH advertising needs creativity and new ideas to break the clutter. Knowledge of the market, changing audience taste, and awareness of upcoming trends is essential to fuel innovations. What need for one not work for another. The "me too" syndrome does not guarantee success. Industry is facing the talent crunch. The gap between demand and supply of talent in number terms is not a

worry, the quality of talent is proven to be a big challenge. Retaining quality talent is another issue in Media and Entertainment industry including OOH advertising.

Fast Changing Government Policies and Regulatory Framework

The OOH advertising is still a state driven industry. The regulations are made at the state levels and very across the states. In several states the regulations are formulated without taking OOH players on board. Like in 1997 Supreme Court had banned hoardings in Delhi on the ground of road safety. In similar manner hoarding got banned in Chennai and Bengluru on the name of environmental protections. There is no policy on size and zone where hoardings can be allowed. Many of prime properties or sites are in litigations. There is no common policy and regulations across the country. Further, there are multiple layers of approvals involved for any new property. Licence and permission are needed and civic bodies make money every time. Even with a license a hording could come down if the civic body decides to change policies. Thus in turn saw the industry growth flinching. Despite of heavy taxes and license fees, permission from various authorities and lack of clarity in on regulations continue to create operational challenges for the industry.

Slow down in economy

In any economic slowdown marketing and advertising spending is the first causality. The years of 2008 and 2009 were tough for Indian media industry because of the global economic slowdown. OOH industry is in nascent stage in India. Therefore, any slowdown and cut in advertising spending hits it more adversely than any other media industry (Syal, 2008). The OOH business is very much capital intensive and has a long return on investment cycle. Since huge investment is already made on acquisition of properties, with the advertising market slowing down, the return on investments made in the OOH space is experiencing intense pressure. Like many of the big players in OOH advertising in India had bought assets on metro stations, airports, and highways at subsequently high price with optimist revenue expectation during 2006-07. But in the recession of 2008-09 some of these assets not proved to be as profitable as previously projected. The role of Government is also not very much encouraging. Government is developing airports, metro stations, ect. on PPP model (Public- Private Partnership) but government provides OOH assets on lease by inviting tender of minimum guarantees and fixed price. Instead, the revenue sharing or joint agreements could be better options where government plays a proactive role in meeting out challenges faced by the industry. The length of contract is also very less in India. A long term contract reduces the industry’s volatility relative to other media. Like airport contract for Times OOH is for a limited period of 3 years and that can be extended for one more year. After 4 years the contract is likely to be put up for bidding again with higher revenue sharing by the owner in case of strong performance. It means Times OOH cannot be assured of great cash flow even after four years (Kohli-Khandelkar, 2010).

Tough competition from other advertising mediums

All forms of media in India are growing and flourishing. Although the ad expenditure is growing in India but competition for pie among the media is also intense. The nature of OOH is local. It is a better medium for local advertisement campaign. But there are other medium that also provide solution for local campaign. Newspapers in India are targeting more local advertisers with their multi-editions, sub-editions and supplements. Same radio is also a big challenge for OOH as local advertising is concern.

Conclusion

Indian OOH advertising industry is undergoing with rapid changes. Industry is moving form ad on media (residual budget of advertisers) to a strategic partner. Private equity and organised funding are shaping the industry. Supply push and demand pull both factors are working in growth of OOH industry in India. Growth drives like private sectors investment in malls, multiplex, real estate and high-end retailers are ensuring the consistent supply of high quality of advertising spaces. Increasing expenditure of government on extending, improving and modernizing infrastructure like airports, metro, highways, etc. are providing scope for OOH. On other side demand for OOH advertising is also growing as the consumers are spending more time out of home in malls, on roads, airports and metros. Creativity, innovative ideas and digital technology are engaging consumers more with higher impact.

But still OOH industry has a long way to go. Lack of strong measurement metric is the main challenge before the industry. It is always difficult for the media planners to bring advertisers on board in absence of standard benchmark to measure the effectiveness of any medium. Absence of standard and uniform norms, policies and regulations for the industry is also a big hurdle in the growth of OOH in India. Though, slowly industry is working in this direction after forming an association called IOAA (Indian Outdoor Advertising Association). Recently the association has taken up the initiative of introducing uniform credit norms across states. Industry also realizing that in the intense competitive market place of Media and Entertainment landscape creativity and talent is the only mantra of survival. Outdoor Advertising Awards is an attempt to give recognition to the creative offering in OOH advertising. With increased creativity, the impact is bound to be stronger.

Tables and Figures

Figure- I
OOH Industry Size

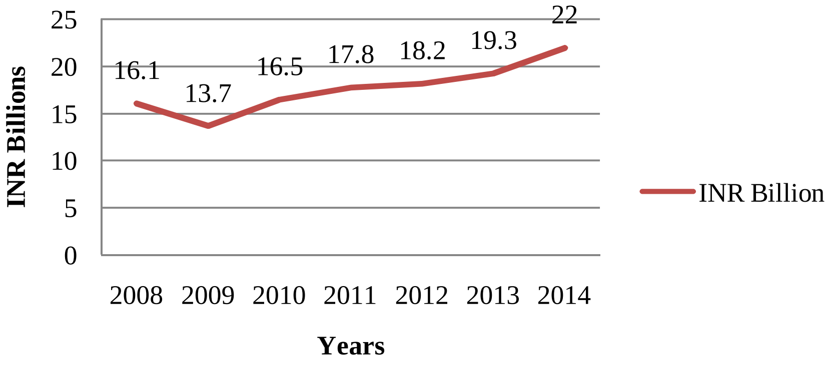

Source: *Shooting for the star, FICCI-KPMG Indian Media and Entertainment Industry Report 2015, FICCI Frames.*

Figure-II
The SWOT Matrix for OOH Advertising Industry in India

	Positive	***Negative***
Internal Factors	**Strength** • Cost Effective Medium without Sacrificing Reach • New Innovations and Digital OOH • Flexibility • Attracting Organize funding and Private equity	**Weakness** • Fragmentation of Market Place • Lack of efficient matrix of performance effectiveness • Inventory rationalization and utilization • Unable to utilise Digital OOH up to its potential • Lack of syndicated studies • Role as supportive medium
External Factors	**Opportunities** • Growth of Urbanization and in Real Estate • Growth of Tier II and Tier III Cities • Changing Life Style of Consumers • Emergence of New Sectors of Advertisers	**Threats** • Talent crunch • Fast Changing Government Policies and Regulatory Framework • Slow down in Economy • Tough Competition from Other Advertising Mediums

Table- 1
Private Equity in OOH Advertising Industry in India

Name of Company	Country of Origen	Invested in	Amount	Area of Operation
Peepul Capital Llc	Mauritus	Integrid Media	$10 million	Billboards, Street furniture
Matrix Partners India	US	Vlive	Rs. 20 Crore	Digital sinage
Sequaia Capital India	US	Digital Signage	$2 million	In store digital signage
3i	UK	OOH Media	$4 million	Digital Screens
Intel Capital	US	Tag Media Network	-	In store, Tv network
Draper Fishers Jurveston	US	Live Media	-	Digital Screens
Lehman Brothers	US	Times OOH	Part of $50 million	Billboards, Street Furniture
Goldman Sachs	US	Times OOH	Part of $50 million	Billboards, Street Furniture
Warburg Pincus	US	Laqshya Media	Rs. 301 crore	Billboards, Street Furniture, Digital Screens
UTI Ventures	India	Laqshya Media	Rs. 65 crore	Billboards, Street Furniture, Digital Screens
Lehman Brothers	US	Serve & Volley	Part of Rs. 250-300 crore	Billboards, Street Furniture, retail branding
Goldman Sach	US	Serve & Volley	Part of Rs. 250-300 crore	Billboards, Street Furniture, retail branding
ICICI Ventures	India	Serve & Volley	Part of Rs. 250-300 crore	Billboards, Street Furniture, retail branding
Intel Capital	US	Emert Samsara Media	Part of $17 million	OOH advg. Technologies in transportation

Source: *Watch This Space*, Brand Reporter Special Report, Issue-4, October 2008, p. 25

Table: 2
Faster Population Growth in Non- metros

	CAGR 06-09
SEC A (Upper Class)	
Metro	2.2%
Tier-II & Tier- III Towns	3.5%
SEC B (Upper Middle Class)	
Metro	2.5%
Tier-II & Tier- III Towns	3.2%

Source: *IRS 2009 R1; DRHP D B Corp. Ltd*

Table: 3
Higher Consumption Growth in Tier-II & III Towns

Growth 2008 Vs 2009	Metros	Tier-II	Tier-III
Consumers Durable Ownership	7%	9%	11%
IT & Communication Product Ownership	13%	16%	19%
Automobile Ownership	5%	4%	10%
FMCG Product Purchases	7%	10%	5%

Source: Marketing Whitebook 2010-2011 One-stop Guide for Marketers

References

1. Reporter, Brand. (2008,). Special Report Watch This Space, Brand Reporter Special Report (Issue-4), pp. 26. downloaded from. October 2015.05: 38:34. http://www.afaqs.com/news/special_reports/, Accessed: 17 November 2012, 13:25:29.
2. CII- PWC, (2012). Indian Entertainment and Media Outlook- 2014. CII-PWC report. pp. 55. see http://www.pwc.in/assets/pdfs/india-entertainment-and-media-outlook/india-entertainment-and-media-outlook-2014.pdf, Accessed 25 October 2015, 05:38:34.
3. Frames, FICCI (2014). Shootingforthestar, FICCI Frames, FICCI-KPMG Indian Media and Entertainment Industry Report https://www.kpmg.com/IN/en/IssuesAndInsights/.../FICCI-KPMG_2015.pdf , Accessed: 12 October 2015.
4. Indian Retail, (2007). Indian Retail- The Geography for Opportunity The “India 50” Jones Lang LaSalle Meghraj. World Winning Cities Series. pp. 7 see http://property.magicbricks.com/newproperty/img/India_Retail-WWC-low-res[1].pdf Accessed 04 February 2012. 12:47:53.
5. Ishan, Raina. (2009). Growth of digital OOH TV. See http://www.allaboutoutdoor.com/industry_speak/industry_speak.aspx?id=24.
6. Kazami, Azhar (2008) . *Strategic Management and Policy*. Tata McGraw-Hill. New Delhi: Third Edition.
7. Kohli-Khandelkar, Vanita. (2010). *The Indian Media Business* (3Ed), Response Books. New Delhi: Sage publication.
8. KPMG, Real Estate Indian real estate- Opening doors, KPMG India, p. 6, downloaded from www.kpmg.com/in/en/.../pages/indian-real-estate-opening-doors. aspx . Accessed 20 October 2015, 08:43:51.

9. KPMG, Retail : Indian Retail- The next growth story, KPMG India. p. 1. downloaded from https://www.kpmg.com/IN/en/IssuesAndInsights/.../BBG-Retail.pdf. Accesses 20 October 2015, 08:43:11.
10. Marketing, Whitebook. (2009). One- stop Guide for Marketers. Marketing Whitebook. Business World.
11. Menon, Nirmal. D. (2004, September15). MRUC to study efficacy of outdoor media. Mumbai: Business Line.
12. Syal, Surinal. (2008). The Future of OOH in India: What Now afaqs. Mumbai. 8 October 2009. see http://www.afaqs.com/news/story/25146_The-future-of-OOH-in-India-What-Now.

Strategic Leadership and Principles of Subordination from Panchatantra

Mahendra Singh[1]
Shilpi Raj[2]
Dr. Rajkiran Prabhakar[3]

Overview- People are the most significant resource of organization .Leadership may act as a bridge or ravine between the employees and the organization so the employee-boss bondage is essential. Leadership as well as subordination are of equal importance. Strategic leadership is utilizing strategy in managing human resource strategically. This study is aimed for exploring 'Sewadharma' as principles of successful subordination discussed in 'Panchatantra'. Study will be oriented towards describing the principles of subordination, and the expectations from the relationship of the leader and the subordinate. The principles of sewadharama have a strategic alignment with human resource management. 'Sewadharma' from panchtantra is still relevant for understanding the means of subordination, in the age of strategic leadership. Panchatantra is a textbook of 'Artha'(money), 'Neeti'(worldly wisdom) and, 'Rajneeti'(politics), which the Hindus regard as the three out of five objects of human desire, the others being, Dharma(religion or morality) and 'Kama'(love). The so-called 'morals' of the stories glorify shrewdness and practical wisdom in the normal affairs of life, and especially of politics and governance. In the same way Acharya Vishnu Sharma has provided insight on subordination as Sewadharma. He has explained different principles by which servants (Employees) can learn subordination and the employers can learn how to manage human resource strategically. The outcome of maximizing both human well-being and strategic organizational performance in leader-follower bondage is also evident in explanation of Sewadharma by Acharya Vishnu Sharma.

Introduction

Strategic approach to human resource management requires strategic leadership that not only involves abandoning the mind set of and practices of "personnel management" but focuses more on strategic issues. The managers has to get the work done through others so they must be able to bring employees into the contact with the organization in such a way that the objectives of both the groups are met.Strategic human resource management involves the development of a consistent aligned collection of practices, programs, and policies to facilitate the achievement of

[1] Research Scholar, Institute of Management Studies, Banaras Hindu University, Varanasi-221005, mashmba@gmail.com

[2] Research Scholar, Institute of Management Studies, Banaras Hindu University, Varanasi-221005, Shilpiraj_123@yahoo.co.in

[3] Assistant Professor, Institute of Management Studies, Banaras Hindu University, Varanasi-221005, Sairajk_77@yahoo.co.in

the organization's strategic objective. The leader-subordinate relations in any organization must be strong, mutual, harmonious and constant for efficient management of human resource. The human resource management in present scenario is the most challenging job that the management faces and to meet this challenge the organizations have understood that strategic leadership is the need of the hour. Strategic leadership is manager's ability to express a strategic vision for the employees of the organization. Strategic leadership is the potential to influence organizational members and to execute organizational change. Another aim of strategic leadership is to develop an environment in which employees estimate the organization's needs in alignment of their need. Strategic leaders inspire the employees in an organization to follow their own ideas. They use reward and incentive system to boost productivity. It also promotes inventiveness, perception, and planning to assist an individual in realizing his objectives and goals. The principle of successful subordination lays down what are expectations that a strategic leader has from the subordinate. The strategic leadership can be learnt from our ancient text and one of it is panchtantra.

सकलार्थशास्त्रसारं जगतिसमालोक्य विष्णुशर्मेदम् ।
तंत्रैः पंचभिरेतश्चकारसुमनोहरं शास्त्रम् ॥3॥

The *Panchatantra* is a world famous collection of stories written by *Pt. Vishnusharma*. Coverage of the book is consolidated form of all other famous political thoughts. This book is also considered as neeti-shastra or a text book of neeti. Neeti roughly means a wise conduct of life or principles. Book was written in story narration form making it simple and concise. The story begins as: There was a king named *Amar Shakti*, ruling the southern state *Mahilaropya*of Hind. *Bahu Shakti,Ugra Shakti* and *Annant Shakti* were three supreme fool, immoral and uneducated sons of *Amar Shakti*. A meeting of state ministers was called by king heading the agenda of educating the supreme fool sons. Meeting ended with the decision of calling *Vishnusharma*for teaching the king's sons. *Pt. Vishnusharma*was requested to train these three in *Artashastra*(politics) and offered with gifting of 100 village *Patta*(administration). *Pt. Vishnu Sharma* solely refused the gifting but accepted the request for training three as challenge and promised to teach essentials of *Rajneet*i within six months if not so he may sentenced to death likewise he announced in meeting.

For teaching three prince *Pt. Vishnu Sharma* framed five different subtitles namely: 1.*Mitra Bheda*, 2. *MitraSamprapti*, 3.*Kakolookiya*, 4. *LabdhaPranash*, 5. *Apareekshitkarak*. *Pt. Vishnusharma* made them unique in politics and administration (*Rajneeti*). From the same time *Panchatantra* is used for making pupils wise (Ryder, 1925).

In Context of employee- employer bondage, leader- follower relationships, specifically ‘principles of serving’ could be understood with the same great textbook. The narrations which are discussed next are with ‘Damanak’ and ‘Kartak’ in ‘MitraBheda’ subtitle of Panchatantra and it follows as(Pt. Guru Prasad Shastri, 2008):

‘Sewadharma’ as Discussed in Panchatantra:

तदद्यैनं भयाकुलं प्राप्य स्वबुद्धिप्रभावेणनिर्भयं कृत्वावशीकृत्य च निजां साचिव्यपदवींसमासादयिष्यामि।
करटकआह- ‘‘अनभिज्ञो भवान् सेवाधर्मस्य।तत्कथमेनं वशीकरिव्यसि।’’ सोऽब्रवीत्-
‘‘कयमहंसेवानभिज्ञः।मयाहिंतातोत्संगेक्रीडताअभ्यागतसाधूनां नीतिशास्त्रं पठनां यच्छुतं सेवाधर्मस्य
सारभूतं हदिस्थापितं श्रूयतां तश्चेदम्-

‘Damnak’ says I am not unknown to Sewadharma. In childhood itself I had learned and by hearted elements of ‘Neetishastra’ from the learned personalities while playing in lap of my father. The summary of Sewadharma learned from scholars is (Pt. Guru Prasad Shastri, 2008):

सुवर्णपुष्पितां पृथ्वीविचिन्वन्तिनरास्त्रयः ।
शूरश्चकृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥46॥

The planet is beautified with golden flowers and these can only picked by three categories of people viz. Brave hero, intelligent and skilled subordinates. Only these types of people are able to have the gold and beautiful gems from the planet which is full of gold and other gems. The shloka states about the availability of resources. It says there is abundance of resource but it can be recognized by only those who has the ability to understand their worth.

सासेवा या प्रभुहिताग्राह्यावाक्यविशेषतः।
आश्रंयेत्पार्थिवं विद्वांस्तद्द्वारेणौव नान्यथा॥47॥

The people who are beneficial to their employers and on whose wordings employers can have strong belief only those people can be used as reference to employers. Means the favored ones of king (employer) are used for recommendation of skills and knowledge by others. Powerful and effective leaders show their loyalty to their vision by their words and actions. Given that an organization’s performance is a direct result of the individual it employs, the specific strategies used and decisions made in the staffing process will directly impact an organization’s success or lack thereof. Strategic leaders must understand the views and feelings of their subordinates, and make decisions after considering them.

यो न वेत्तिगुणान्यस्य न तंसेवेतपण्डितः ।
नहितस्मात्फलं किंचित्सुकृष्टादूषरादिव ॥48॥

The wise men should left serving and following of the boss who does not know well about the traits of their subordinates, because as unfertile land does not yield any kind of crop after cultivating it well too. Similarly no benefit is resulted from the boss who does not understand the traits of subordinates. So the performance appraisal must be done in order to understand the strength and weakness of employees. If the employees are not appreciated they will get demotivated and finally it will cost the employers. So the employers must give recognition and rewards to the deserving ones. Strategic leaders just don't have skills in their narrow specialty but they have a little knowledge about a lot of things.

द्रव्यप्रकृतिहीनोऽपि सेव्यः सेव्यगुणान्वितः ।
भवत्याजीवनंतस्मात्फलंकालान्तरादपि ॥49॥

We should keep on serving to boss (employers) who is emphatic, talent loving, like servable nature in spite of not having wealthy progress and good supporters. This all is considered to be wise decision because when (in future) such boss will be having authority and wealth then rewards can be expected. Trust and loyalty towards the employer is very important but it cannot be achieved through authority. The employees will devote themselves if the employer gives a conducive work environment. So the employers should maintain healthy organizational culture. Strategic leaders must have the potential to understand their own moods and emotions, as well as their impact on others.

अपिस्थाणुवदासीनः शुष्यन्परिगतः क्षुधा ।
नत्वेवानात्मसम्पन्नाद्वृत्तिमीहेत पण्डितः ॥50॥

It is wise to end our self (career) like does a tree in absence of water and food. But not to hope for livelihood (career) from non-sense boss who does not have understanding of right and wrong. Means it is far better to be jobless rather than hoping for career from such non-sense boss.. One should focus on the proper career planning. If the work culture and the authorities are not supportive then it is very important to switch to other environment. There should be ethical code of conduct in the organization. The employer should behave ethically or it may lose its employees.Strategic leaders must have the potential to control distracting/disturbing moods and desires, i.e., they must have self-control and they should think before acting.

सेवकः सवामिनं द्वेष्टिकृपणंपरुषाक्षरम् ।
आत्मानंकिं स न द्वेष्टिसेव्यासेव्यं न वेत्ति यः ॥51॥

Fool subordinates should criticize their self in spite of criticizing their cheap and rude boss. At least these subordinates (employees) should know to whom to serve and to whom not. It means that if subordinate was aware about that he should follow (serve) empathetic boss but not to uncaring and cheap boss, then himself had serving to such boss. But if somebody serves to cheap and rude boss then it's their own fault. If the employers is not empathetic and not supporting in employee's development and betterment then it's the employee's choice to leave or continue to serve the boss. This is also one of the major reasons of increasing employee attrition rate. Strategic leaders must be friendly and social.

यमाश्रित्म न विश्रामं क्षुधार्त्ता यान्तिसेवकाः ।
सोऽर्कवन्नपतिस्त्याज्यः सदापुष्पफलोऽपि सन् ॥52॥

Servants should detach themselves from powerful and resourceful boss also. If the subordinates are not able to fill their appetite and adequate rest under the boss, in such conditions like people are leaving the trees (like Aak) which are full of flowers but not of use. Means as Aak trees are always full of flowers but nobody use them because they are poisonous, similarly the employer full of money and resources should also be left if they are not paying right wages to their employees. There should be fair compensation to each and everyone in the organization no employee should be underpaid or overpaid. There should be fair treatment with each and everyone in the organization.

जीवेतिप्रब्रुप्रोक्तः कृत्याकृत्यविचक्षणः ।
करोतिनिर्विकल्पः स भवेद्राजवल्लमः ॥54॥

The subordinates which are ever saying yes sir I am here and does whatever boss delegates them, by knowing well what 'to do' and what 'not to do' (responsibilities) and without making any if- but are well treated in organisations. Only such workers are close to the authorities. This "yes boss" kind of attitude is very dangerous for the organizational culture. It not only causes favoritism but also creates an unhealthy environment which promotes unfair treatment with employees. Only those who have such attitude will be considered by the employers as they will support everything. Such kind of employees can be even risky for the organization as they may support anything just to please their boss which may be against the organization. It will also cause employees dissatisfaction and will demotivate other employees.

प्रभुप्रसादजं वित्तं सुप्राप्तं योनिवेदयेत् ।
वस्त्राद्यं च दधात्पंगे स भवेद्राजवल्लमः ॥55॥

Servants (subordinates) should accept happily whatever appraisal, gifts (monetary or non-monetary) is given by authorities and show satisfaction on that. A subordinate who utilizes well the gifting by boss are always close to them. The employees should acknowledge the gifts given by the employers and they should be grateful to the employers. The employees should also appreciate such initiatives taken by the employers as it motivates the employers to give the employees incentives and fringe benefits. Strategic leaders must have a zeal for work that goes beyond money and power and also they should have an inclination to achieve goals with energy and determination.

अन्तःपुरचरैः सार्द्ध यो न मन्त्रं समाचरते्।
नकलवैर्नरेन्द्रस्य स भवेद्राजवल्लभः ॥56॥

The people who do not involve themselves in close gossiping and relations with the other fellow workers in organisation are well treated by authorities, and who does not have affaires or fight with close female workers of boss are benefitted with their kindness. The employees should maintain harmonious and cooperative relationship with each other. The organization should have an eye on the conduct of employees and especially on the conduct of male employees with the female employees. As people work in teams in an organization so they should be cooperative to each other and they should behave in a way that does not hamper the productivity of the organization. Efficient and effective leaders keep themselves updated about what is happening within their organization. They have various formal and informal sources of information in the organization.

द्यूतं यो यमदूताभं हालां हालाहलोपमाम्।
पश्येद्दारान्वृथाकारान्स भवेद्राजवल्लभः ॥57॥

Workers who considers gamble as indication to death of career, alcoholic drinks as poison to career, and the female workers of organization not as lifeless painting divas are graced with kindness of authorities. The employers expect a moral character from their employees depending upon their cultural belief and practices. The employees should bear good character to gain the employers confidence. The character is an important factor in deciding for accountability of the employees.

युद्धकालोऽग्रगो यः स्यात्सदापृष्ठानुगः पुरे ।
प्रभोर्द्वाराश्रितो हर्म्ये स भवेद्राजवल्लभः ॥58॥

Employees who always stay forward at work, follow authorities at organization, and stay outside the office of authorities are beloved by employers. The role of leaders is very important in an organization. The leader have to think and act forward because they are the main source of motivation to the other employees. The managers are the leaders they know how to get work done by others. So they get appreciation from the employers. Strategic leaders make a very wise use of their power. They must play the power game skillfully and try to develop consent for their ideas rather than forcing their ideas upon others. They must push their ideas gradually.

सम्मतोऽर्हेविभोर्नित्यमितिमत्वाव्यतिक्रमेत् ।
कृच्छ्रेष्वपि न मर्य्यादां स भवेद्राजवल्लमः ॥59॥

Workers who do not cross the limits given by boss even he knows he is very close to the authorities, they have full confidence on his decisions are graced with kindness of employers. The employees should work according to their roles and responsibilities assigned to them. The employees must adhere to the organizational policy. Effective leaders are proficient at delegation. They are well aware of the fact that delegation will avoid overloading of responsibilities on the leaders. They also recognize the fact that authorizing the subordinates to make decisions will motivate them a lot.

द्वेषिद्वेषपरो नित्यभिष्टानाभिष्टकर्मकृत् ।
योनरो नरनाथस्य स भवेद्राजवल्लभः ॥60॥

The people who are jealous with enemies of authority means have no relations with them, and have friendship with the friends of authority, and maintains good relations with friends of boss enjoys the kindness of authority. The employees are the representative of the organization. It is their responsibility to maintain a strategic relationship with the identities related to the organization. This helps the employees to gain the employers confidence.

प्रोक्तः प्रत्युत्तरं नाहविरुद्धं प्रभुणा च यः ।
नसमीपेहसत्युश्चैः स भवेद्राजवल्लभः ॥61॥

The servants who never replies to the tough and severe comments by boss, never laughs and talks loudly in front of boss are always appreciated by authorities. The employees should be submissive to the employers. The employers appreciate the employees who are soft spoken and well behaved.

योरणं शरणं तद्वन्मन्यतेभयवर्जितः ।
प्रवासंस्वपुरावासं स भवेद्राजवल्लभः ॥62॥

The servants who take part in the business of office with dare as it home affaire, and moves from one location to other for official businesses considering every location as his home town are graced with kindness of authorities. The transfer and deputation is a part of the job and the employees who see this as an opportunity and responsibility are appreciated by the employer.

नकुर्य्योन्नरनाथस्य योषिद्भिः सहसंगतिम् ।
ननिन्दां न विवादं च स भवेद्राजवल्लभः ॥63॥

The people who does not have grievances with ladies of office, have no company with them and never criticize them are treated well by employers. There is need for acknowledging the role of women in the betterment of the society. So the female employees of the organization must be treated well.

Discussion in Present day Context

The strategic leadership views leader-subordinate relations to be strong, mutual, harmonious and constant in any organization not only in the interests of the employee but, equally important for the interests of the management. The employee and employers are bounded with certain kind of relation. This employee-boss bondage is essential for effective and efficient management of human resource. The sewadharma focuses equally on the importance of understanding how to become successful strategic leader or subordinate. Present day situations are also in demand of intelligent, skilled and positive attitude bearing subordinates. The world is full of opportunities and resources. The people who are devoted and hardworking are enjoying these. Intelligent and knowledge full workers are highly sought in today's world. For bettering the bondage between higher authorities and servants these principles are utilized well. Many of the office misconduct, indiscipline, in subordination which is happening may be resolved with application of these principles. Leaders should also understand these principles for making it easier to subordinates. Subordinates can practice these principles for enjoying, faith, trust and grace of their boss. A learning organization is one in which expansive patterns of thinking are nurtured and collective aspiration is set free. People in learning organizations are empowered to achieve a clearly articulated organizational vision. They are continually learning to learn together to expand their capacity to create desired results (P, 1990). The vision, coupled with the organization's purpose (its reason for existence) and mission (what the organization does and who it serves), work in concert to define the organization's core values. This visioning process then forms the basis for the social construction of the organization's culture as a learning organization and the ethical system and core values underlying it that will form the foundation for relating to and meeting or exceeding the expectations of high power and/or high importance stakeholders (e.g., customers, employees, chain of command, regulatory agencies). For leaders to facilitate meaning making as a spiritual

experience, they must make an empathetic linkage to organizational members' cultural grounding. In other words, the leader must be able to recognize as well as honor the cultural diversity of the organization in order to create an organizational culture of shared vision (Owens R.G., 2007).

'Sewadharma' as discussed in Indian Value system provides eminent ways of successful subordination. It emphasizes on criticality of subordination on service outcomes by employees. Current human resource management still doesn't find such kind of learning or principles by which subordinates can learn how to be successful subordinate. Most of the principles, rules, regulations and implied do's and don'ts have been taken from Sewadharma. Thus acting strategically upon these principles the employers can also learn how to develop and maintain a pool of human resource.

Conclusion:

The strategic leaderships bring out sewadharma among the employees. It provides insight for present human resource management practices. It also emphasizes the importance of strategic management of human resource. Different principles cited in paper itself provide deep insight for employee and employer bondage. These principles help the leaders to develop their human resource with and for strategic advantage. It also shows how employees can contribute to the organization in more effective way with their personal development. The healthy employee-employer relations are being considered as way of success in any kind of organisation. The grace and gifting are one way of showing trust, love and worthiness to employees. The Sewadharma explains how these gems can be achieved by intelligence and skills. In Panchatantra Pt. Vishnu Sharma has also identified the factors that cause the employee turnover, thus prescribed ways to increase employee retention, in an organization such as ignoring the qualities of the employees, lack of peer respect, joblessness, demotion, lack of just performance evaluation, not caring for the self-respect of the employees, not making distinction among employees on merit, lack of bondage between the employees and the boss. The employee retention can be increased by giving due recognition for the qualities of the employees and place them in the fit position deserving in organisation. Pt. Vishnu Sharma has given more insights on day to day working and their monitoring further which may be studied. To conclude, Strategic leaders can generate vision, express vision, passionately possess vision and persistently drive it to accomplishment among the subordinates. The principles of subordination help to imbibe this vision and successfully executing them into reality for organizational success.

References

1. Owens, R. G., & V. T. (2007). *Organisational behavoior in Education: Adaptive leadership and reforms (9th ed.).* Boston: Pearson Education.

2. P, S. (1990). *The Fifth Discipline.* NewYork: Doubleday.

3. Prasad, Guru. & Shastri, A. S. (2008). *Sri Vishnu Sharma's Panchtantram.* Varanasi: Chaukhambha Shubharti Granthmala. (Shlokas 3 and 46-63).

4. Ryder, A. W. (1925). *The Panchatantra of Vishnu Sharma; English translation.* Chicago: University of Chicago.

5. Subramanian, T. V. (2007). Lessons from Panchatantra. New Delhi,

6. Nairon, Narendra. (2010) *The relevance of Panchatantra*. http://www.spekingtree.in/spiritual-articles/faith-andrituals/The.relevance.of-the.Panchatantra.

7. http://panchatantra.org/ February, 2013.

8. http://epanchatantra.com/PT/index.asp?No=291,February, 2013.

9. C Chendroyaperumal; *Best Human Resource Management Practices: Prescriptions in Panchatantra.*

10. Mishra, J. P. (1910). *Panchatantra: Vishnu sharma.* Bombay: Khemraj Shri Krishandas.

11. http://managementstudyguide.com/strategic-leadership.htm January 27, 2016.

Jakari: Life-Songs of Haryanvi Women

Devender Kumar[1]

Women's folk narratives especially those which are performed by them in their private sphere destabilize and deconstruct the dominant patriarchal ideology of society. Woman in these narratives turns out to be both the object as well as subject of desire. Sometimes she is constructed in very traditional terms as alluring, seductive, mysterious, irrational, and also unknowable. The feminists usually oppose the propagation of such an image of womanhood and call it a male view of woman to justify her exclusion from the realm of power politics and decision-making. She is presented in the mainstream culture as somebody passive, unintelligent and hence unable to take care of herself. As the "eternal puzzle," woman is also portrayed as incapable of questioning and fighting against oppression. She is thus projected ultimately an object to be desired, explored and possessed. Nonetheless the same woman appears in her own narratives as an active agent to the best of her abilities when she has her own desires especially the sexual ones to express. There are many songs and anecdotes in Haryanvi folklore about this kind of woman. She is depicted as attracted towards some exotic character mostly an outcaste and expressing her desires and longings openly. To fulfill those desires, she can invent any guile to dupe the custodians of patriarchy. In such matters, the relationship between/among women themselves turns out to be that of female trust, understanding and friendship. The portrayal of a woman expressing her desire openly and unabashedly is revolutionary in a culture that strongly emphasizes female sexual passivity. Keeping these facts belonging to the "private domain" of women in mind, this paper analyses the endeavour on part of Haryanvi woman to project her alternative images in their folklore. *Jakari* a significant genre of Haryanvi women's folk songs is used as the primary text to study a woman's 'inner world' in her own words.

Haryanvi peasant women's folksongs can be divided broadly into the following categories: 1. Ritualistic songs; 2. Seasonal songs; 3. Bhajans, and 4. Jakari. Ritualistic songs comprise mainly birth songs, marriage songs and elegies. Seasonal songs consist in songs sung exclusively during a particular season. For instance, *Samman Songs* are sung during the month of Shravan, the season of rain and clouds; *Fagan Songs* are sung in the month of Falgun, the season of mirth and merriment; *Katyak Songs*are sung in the month of Kartik , the time to propitiate gods and deities, and so on. *Bhajans* are mainly sung by old women during a religious gathering or at the time of some elder person's death. *Jakari* songs are unique in the sense that they can be sung on any occasion except that of death. The Jakari songs are of utmost significance in this paper as I find them representing an important segment

[1] Associate Professor, Dept. of English, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi—221005. Email: devsuman2@gmail.com

of a young Haryanvi peasant woman's life: the segment beginning with her coming of age (attaining puberty) to her becoming the mother especially of a son (attaining motherhood).This is actually the most crucial phase in the life of a woman during which she undergoes most of the drastic upheavals of her life: She undergoes hormonal changes affecting her mental makeup permanently; she is married off to an unknown man; she is migrated to her conjugal home from her natal home for life; there in her natal home she is faced with the task of establishing her identity as a trustworthy member of the family; she has to bear male child to ensure the progeny of her conjugal clan. In this regard, Jakaris are the most authentic available accounts of a woman's displacement and re-establishment. She is forced due to patrilineal norms to migrate from her place of birth and is gazed by patriarchy how ingenuously and skillfully that also on her own she establishes herself again. These Jakari songs are of utmost significance also because of the fact that these have not yet been documented or commented upon by any folklorist in Haryana or anywhere so far; these songs have rather been dismissed as sundry and miscellaneous items in virtually all the existing documents of Haryanvi folklore.

Jakari folk songs have developed mainly midst groups of women going to fields for agricultural work, to village wells and ponds to fetch water, disposing of household chores like grinding, cooking, tendering cattle and children, spinning, sewing, dyeing, etc. as most of these routine tasks are disposed of by young women, Jakaris become a musical expression of their dealings with these tasks at hand. In between they weave in these songs their own view about these activities and their cultural extension into familial relationships. On third level they use these jakaris to spell out their web of desires and longings that remain veiled behind the veneer of *sharam* (bashfulness) and *ijjat* (honour) imposed on a woman's person as something natural. If one wants to draw the boundaries of this most crucial phase in a woman's within the musical expressions, the following two folk songs can be used as the initiation and culmination of that phase respectively:

1. "*Oh O chah muklave ke Oh O chah muklave ke*
   Mei dussar leke jaoon ri chah muklave ke"
   (See my enthusiasm for Muklava (departure for conjugal home)
   I depart with a load of gifts see my enthusiasm for Muklava)

and

2. "*Bagad bichale peepli Nandlal*
   Lala ji O jan ka to adbad paan
   Pyari lage kulbahu Nandlal"
   (There is a *peepal* treein my lane
   Whose leaves are too dense;
   Nowadays the daughter-in-law looks lovely, O Nandlal."

While the first songs referred to above is a testimony to a young woman's desire and expectations of love while going for her conjugal home, the second folk songs (a birth song) recounts the glad acceptance of that woman by her conjugal kin only after she has born a male child to them. In between these two crucial points there happens so much in the life of a woman before which everything that occurs before or after appears negligible. The domain of Jakari lies within these two points and herein they turn out to be musical expression of a young woman's heart and mind.

When the young woman reaches her conjugal home, her first substantial contact is obviously forged with her husband. Her husband also responds to her in a positive way. He starts caring for her. He even does not hesitate in helping her in heavy chores for instance in grinding the theme of the following jakari:

"*Bakhat ooth ke chaki jhoyi e chaki dhore aave se*
Meri sasar ki aankh ughad gi e yo ke chala ho rya se
Ke sove se jayeroye ghar ka chalan bigad rya se
Bahu sove yo chora peese mota chala ho rya se"

(I started grinding early in the morning; he came close to the grinding stone;
Just then my mother-in-law woke up and got stunned to see that scene.

[She woked up her own husband saying:]

"How can you sleep O mourner of your kids, customs of this house are in danger:

The daughter-in-law is sleeping while our son in grinding.")

The intimacy between young couple becomes a matter of jealousy for the mother-in-law. This results into a life-long bickering between mother- and daughter-in-law.

As soon as the intoxicating phase of marriage is over and the man and woman have to engage themselves into arduous daily routine, the woman starts facing the hardships of her conjugal life especially at the hands of her mother-inlaw. The mother-in-law who is already vexed now starts teasing her newly married daughter-in-law in many different ways. For instance she gives her only barley bread to eat when she senses that the latter likes wheat bread:

"*Saas bajre ki roti ri'*
He ri do dendi de de ek, saas gihuan ki de de ri.
Bahu e gihuan ki khave e
He tera babal sahukar ke bharke gaadi lyave e?

Saas mhare gihuan ke theke ri

He ri tere ek bori mh juar usse mh bhodi e bhodi ri"

(O mother-in-law, don't give me barley bread

if you wish give me only one, but give the wheat bread.

O daughter-in-law, you eat wheat-bread,

As if your father is a rich man who sent cartful of wheat for you? O mother-in-law, my father is a wheat trader

While you have paltry sorghum in a sack, full of chaff.)

Dismayed at her mother-in-law's persistent taunting she starts pining for her natal home. One day her brother comes to meet her and she complains before him about her plight. The brother talks to the mother-in-law in favour of his sister and seeks her permission to take his sister with him for a few days. The woman feels elated at her prospect of going to her natal home. But this sense of elation turns out to be short lived when the brother tells her in isolation the real thing:

"Keh de keh de re bira mera man ki re baat bhola man ki re baat
Ma e meri ne ke kahya je
Ma e kahya se re bai ne le ghar aay beta le ghar aay
Baap kahya dhee meri ghar bhali je."

(O brother, tell what I want to hear

Tell what my mother has said.

The mother says bring my daughter home

The father says daughters are good at their own home.)

It is not only that the mother-in-law alone is on a mission to torture the newly married woman; her other conjugal kins also especially her elder brother-in-law and sister-in-law leave no chance to torment her. And the condition of that woman becomes more miserable if her husband is not at home. In the following Jakari a woman narrates such an experience:

"Likkad de ne tanna marya marya Jeth Hazari ne O meri jyan
Matna O Jeth tanne mare jaan gayi beemari ne
Khood khood mh gerun jewri bulwa lyun Patwari ne O meri jyan
Likh parwana piye dhore gerya yaad kre teri byahi O

Jaldi se piya ghar pe aao kabja karya tere bhai ne O meri jyan."

(Coming and going my majestic elder brother-in-law taunted me O my life

Don't taunt me O Jeth I know what ails you.

I'll call the village land accountant and put measuring rod in each furrow

I wrote a letter to my husband telling him his wife misses him badly

You come home very soon as your brother's possessed everything.)

Receiving the letter, her husband comes on vacations and asks her what happened. When she tells about the wrong-doings of her brother-in-law and even about his sexual advances, he dismisses her complaint in a typically patriarchal manner:

"*Gori re ke ho gya thamne gerya taar pe taar?*
Relwai sari mera bhoora kachiya gaat
Machine chlaaun devar ne pakad liya haath
Gori re ke ho gya meir ma ka jaya chhota beer"

(O wife, what happened that you sent letter after letter?

I wore blue sari on my fair delicate body

I was operating machine when your brother caught my hand.

O wife, so what? He's my brother born of same mother!)

The woman becomes further hopeless in such a situation wherein she is shown her proper place by her own husband—the place quite inferior to rest of the clan members. The climax of miseries sets in her life when she fails to deliver a son to her husband—the ultimate test of the worth of a woman in Haryanvi family. The husband becomes so insensible that he takes no time in deciding to marry another woman:

"*Na tere chhora re gori na tere chhori*
Dilli sehr mh re gori suthri si chhori
Suthri si chhori re gori lyani jaroori
Uske ho jya re gori chhora re chhori."

(O wife, you neither have a son nor a daughter

In the city of Delhi there's a pretty girl

It's inevitable to bring the pretty girl home

She'll bear a son and a daughter)

Later on, in the same jakari the unfortunate woman laments the losses of her life:

"Hei Ishbar teri leela re nyari
Ek laal ke oopar chut gi re nagari"

(O God, your playful nature is unique

Not having a son I was banished from the community).

These have been the main factors responsible for miserable plight of women in Haryanvi society. Combined together these factors put so many burdens on the psyche of a woman that suicide seems to be a viable option to her to get rid of her death-in-life condition. In one jakari the woman narrates what happens after her committing suicide:

"Kadhen devar jeth bhan meri tas tas rove saas he
Kyun rove meri saas bawli nirnabasi kadh deyi
Kadhen devar jeth bhan mera tas tas rove bhartar he
Kyun rove bhartar bawle byah lyayiye thanedar ki!"

(Brothers-in-law draw my body out of well and my mother-in-law cries loudly

Why cry now O my crazy Mother-in-law? You pushed me out hungry n thirsty.

Brothers-in-law draw my body while my husband weeps inconsolably

Why weep now o husband? Go and marry a police inspector's daughter now.)

The forgoing analysis shows it amply how Jakari as a folksong genre represent the life and its upheavals for a young Haryanvi woman. Most of Jakari songs are replete with sense of helplessness and hopelessness as ingredients of a woman's life. Themes such as unnatural death in the form of suicide or even murder, banishment, alienation, etc. recur profusely. And it is but natural if we keep in mind the tests and trials a woman have to undergo in Haryanvi society. However it is one aspect of the issue. In other words, all Jakaris are not like that. There are other themes like woman's retaliation to individual insults, her subversion of dominant ideology, and her resistance to patriarchal norms through humour, slyness, lies, etc. in one jakari she mocks at the gluttony of her elder brother-in-law in order to subvert his authority in a subtle manner:

"Ei sawa penhsar ke tare gulgale e dhai ser poyi roti
Ei tokni bharke randhi kheer ki e laagad thi mhare jhoti

Ei jeth mere ka nyonda de diya karke kardi chhati
Ei sawa penhsar ke kha gya gulgale e dhai ser kha gya roti
Ei tokni bhari kha gya kheer ki e iisa jetha daki
Ei balak bacchche bhookhe so ge me thi nirnabasi"

(O I fried five and a quarter *seergugale* and rolled two and a half *seerroti*

O I boiled full vessel of *kheer* as our buffalo was new to milk

Summoning my all courage I invited the elder brother-in-law

He ate five and a quarter *seergulgale* and two and a half *seerroti*

The gluttonous brother-in-law even gulped the full vessel of kheer

My children went to bed empty stomach

And I too remained hungry n thirsty since morning)

In the following Jakari she puts aside the patriarchal norms of sexuality and celebrates her sexual encounter in a hilariously tone. In this Jakari a Jat girl invites a Brahman guy for feasting at her home. The guy takes her into the inner chamber and shuts the door. Just then a neighbour woman comes to her house. The girl asks her to come in the inner chamber. As soon as she reaches there, the guy pulls her also inside and shuts the door. See the climax:

"*Gaam ne paat gya bera teenuan ka kothi mh dera*"

(The village came to know the threesome is in the inner chamber).

The richness of Jakari folk songs as a genre is discernible in the variety of these songs as far as themes are concerned. Another significant theme dealt with in Jakari is that of a woman's self-criticism. In such jakaris she looks at her own dealings in a self-reflexive way and presents an unusual kind of self-analysis. It is in these kinds of jakaris that a woman's heart finds its best expression: Her desires which remain choked in heart during daily life find fluent musical expression in these jakaris. In this context she no longer remains an object of desire but becomes a desiring subject subverting the age-old norms in such a subtle manner that powers-that-be fail simply to understand the reality of situation. She adopts so may subversive tricks to save herself from those tasks she does not want to do, from those precarious situations arising out of her desires in which she fears to be held guilty of violation. It is in these songs that female bonding surfaces at its best. In the following jakari, a young girl manages to be sent to her conjugal home even before the

scheduled time with the help of her mother and both mother and daughter succeed in hiding this fact:

"Hei ri ma manne de na ghaal ure jee lagda na mera
Hei teri sathan boojhen baat tai ri hamne patya nab era
Hei uski saasu sakat beemar jamai le gya se e mera"
(O mother, send me to my conjugal home; my heart no longer lies here.

O your friends ask me how it happened? They couldn't know.

O her mother-in-law is critically ill; hence my son-in-law's taken her)

The young woman has no doubt come to her conjugal home before time out of curiosity. Nonetheless very soon she realizes that life here is also not all goody goody.

Here also she has to deal with the same household chore even with an increased intensity as she is not a daughter here but a daughter-in-law. In the following jakari she is asked by her husband to bring his midday meal on fields. But she does not want to go to fields. Instead of denying before her husband she picks up a quarrel with her mother-in-law so intensely that her father-in-law has to intervene. He chides his own wife for quarrelling but the woman takes the pretense of being victimised by him and does not go to fields. In evening her husband comes back from fields and before he could say anything she starts weeping. The considerate husband takes up the issue with his father:

"O Babal isi ke jiwani chhe gi tanne meri NIrmalan peeti
Hei re beta teri NIrmalan jhoothi manne apni boodhli peeti"
(O Father, how much you're intoxicated with youth

That you beat up my Nirmala?

O Son, your Nirmala is a lier;

I beat up my own old woman.)

Likewise, if the husband is away to some other place and woman is living alone, she can become wayward very easily. Even such a woman is adept at befooling her man by showing her *tiriya charitra.* IN the following jakari a woman whose husband is in army becomes wayward. When her husband comes back and he comes to know about it, he becomes furious. He takes a baton in his hand and goes to the village well where his wife is fetching water. He threatens her to kill:

"*Neid teri taarunga re tanne lhyaj saram na aayi*
Aankh bhar gi pani ki O tere kisne syakha layi?
Rule gere hathan ke e paapi ne kalje ke layi
Gail le chalunga re meri ghani dhukh payi murgayi"

(I'll cut your throat; you've become so shameless.

Tears welled up in my eyes and asked who poisoned your ears?

He threw away his baton, embraced me and said:

I'll take you along, you've suffered much.)

As her experience of married life increases, she becomes more confident about herself and expresses his desires explicitly. One day she does not hesitate even in proposing an unknown man on the well. The man agrees to take her along with him for his younger brother and challenges her to show how smartly she will set his household. She takes the challenge boldly and declares:

"*Mera ke dekheiga O me to hilya hilaya naara*
Roti O teri po dyungi O chadhwa dyun choon udhara
Pani ke tere bhar dyungi O tokni ke baja dyun bara
Aur ke chaiye se O bhaiyan ten paad dyun nyara"

(What will you test me O I'm already a seasoned ox.

I'll role chapatti for you but make you debtor of flour.

I'll fetch water for you but disfigure the brass vessel.

What else do you want? I'll alienate you from your kin.)

To sum up we can say that Jakari folk songs are full of varied reflections of the 'inner world' of a Haryanvi woman. If one has to understand their life, one must understand Jakari and analyse it one of the most important yet most neglected texts. Nowadays there is a growing consciousness of women's cultural and historical significance in the development of any society. Scholars have mostly been concerned either with the written literary texts or mechanical data collected by various agencies from time to time to assess the women's issues. Sadly enough, there has been little folkloristic work at least in India directly addressing issues related to women whereas folk narratives are supposed to be the most fundamental and authentic expressions of such issues. It is in the folk narratives of her own that woman projects most comfortably a female vision of the world wherein she internalizes, resists and subverts the hegemonic discourses of her society.

The question how society affects folklore is one side of the coin; the other side is the question how folklore influences the perceptions of a society. As folklore changes over a period of time, it reflects the social situation, presumably the result of material changes that affect a society. This analysis is bound to throw some light on the phenomenon how the social order and social institutions articulate in the formation of the subject (individual), or how the link between social and psychic reality is to be spelt out. Taking cues from this study of people’s verbal art, the concerned authorities will benefit while formulating emancipatory policies for the masses especially women.

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के शताब्दी वर्ष पर "हिंदी विभाग के सप्तऋषियों का पुण्य स्मरण"

प्रो. महेंद्र नाथ राय[1]

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के कला संकाय के हिंदी विभाग में यशस्वी आचार्यों की एक सुदीर्घ परंपरा रही है जिन्होंने अपनी प्रतिभा, विद्या तथा सारस्वत साधना के बल पर हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अध्ययन और अध्यापन की न केवल प्रशस्त और दृढ़ नींव रखी बल्कि उन्हें उत्कर्ष की ऊंचाईयां भी प्रदान की। ये आरंभिक आचार्य महामना द्वारा नियुक्त हुये थे और उन्होंने इनकी नियुक्ति में आचार्यों के शील-स्वभाव और सदाचरण को हमेशा प्राथमिकता दी। नहीं भूलना चाहिये कि जैसे प्रत्येक मनुष्य, जाति-वंश और परिवार का निजी कुल-शील होता है, वैसे ही किसी किसी शिक्षण-संस्था का भी। महामना के इस विश्वविद्यालय की दीप्ति और यश के मूल में वस्तुतः उनके द्वारा चयनित मनीषी आचार्यों के शील-संसार युक्त सुवासित व्यक्तित्त्व का ही आकर्षण था जिसके सम्मोहन में बंधकर दूर-दूर के विद्यार्थी यहां खिंचते चले आते। यह वही हिंदी विभाग है जिसे 'नागरी प्रचारिणी सभा' के संस्थापकों में प्रमुख बाबू श्यामसुंदर दास ने लाला भगवान दीन, आचार्य पं. रामचंद्र शुक्ल, आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल, पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि के सहयोग से मध्यकालीन काव्यबोध, आलोचनात्मक विवेक, आधुनिक काव्यधारा, साहित्य की मधुमती भूमिका तथा भाषा-वैज्ञानिक सूझ-बूझ का परचम लहराया था। बाद में ज्ञान की इस मशाल को आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और उनके योग्य शिष्यों-प्रशिष्यों ने पूरे देश-विदेश में जलाये रखा।

लाला भगवान 'दीन' काशी हिंदू विश्वविद्यालय के आदि अध्यापक थे जो मालवीय जी द्वारा 1919 ई. में नियुक्त हुये थे। शुरू में विश्वविद्यालय ने इन्हें फारसी पढ़ाने का दायित्व सौंपा था, किंतु आवश्यकतानुसार वे हिंदी निबंध और रचना भी पढ़ाने लगे। लालाजी 'रामचरितमानस' और 'बिहारी सतसई' के मर्मज्ञ व्याख्याता थे। जीवनभर उन्होंने अपने रसमय अध्यापन का परचम लहराया। संपादन, टीका और आलोचना के क्षेत्र में अपने सर्वोत्तम से हिंदी का भंडार भरा। वे अद्भुत विद्या-व्यसनी थे। 53 वर्ष की उम्र में हिंदू विश्वविद्यालय के अध्यापक बने थे पर अल्प अवधि में ही काशी हिंदू विश्वविद्यालय के साथ ही नागरी प्रचारिणी सभा और दीन विद्यालय द्वारा हिंदी भाषा और साहित्य की जो सेवा की, अध्ययन और अध्यापन का जैसा कीर्तिमान बनाया तथा प्रातिम शिष्यों की जो मंडली तैयार की वह अभूतपूर्व है। हिंदी शब्द-सागर के साथ विभिन्न ग्रंथावलियों के संपादन तथा अत्यंत दुरूह समझे जाने वाले ग्रंथों की बोधगम्य टीकाएं लिखकर उन्होंने हिंदी भाषा-साहित्य को जनता का कंठहार बना दिया। लालाजी बाहर से अतिसामान्य पर भीतर से पूरी तरह सरस थे। रीतिकालीन काव्य पढ़ाते समय रस की धारा ही बहा देते। कवि-सम्मेलन की चर्चा मात्र सुनने से उनकी रूग्णता भाग जाती। दूसरों को सदा मान दिया, आप अमानी रहे। जीवन-पर्यंत विद्या-दान किया। जिस शिष्य से जो काम लिया, वहाँ उसी का नाम दिया। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र उनके ऐसे ही शिष्य थे जिन्होंने जीवन भर गुरू की महिमा का गान किया। दूसरे शिष्य पं. पद्मनारायण आचार्य की आँखें अपने गुरू

[1] पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग एवं संकाय प्रमुख, कला संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी

के स्मरण में भर जातीं। उनके अनुसार जो काम कभी मल्लिनाथ ने संस्कृत के लिये किया, वही काम, बल्कि उससे भी बढ़-चढ़कर, लाला जी ने मध्यकालीन हिंदी कविता को बोधगम्य बनाने के लिये किया।

'आचार्य रामचंद्र शुक्ल' दीन जी के थोड़े दिनों के बाद ही उनके साथ हिंदी पढ़ाने के लिये मालवीय जी द्वारा नियुक्त किये गये। उनके चलते पहले नागरी प्रचारिणी सभा का, फिर हिंदू विश्वविद्यालय का तथा हिंदी भाषा-साहित्य का ऐश्वर्य बढ़ा। वे गंभीर दृष्टि संपन्न-समीक्षक, इतिहास-लेखक, साहित्य शास्त्री, निबंधकार एवं अनुवादक थे। उन्होंने जिस भी विधा का स्पर्श किया, वह स्वर्णिम बन गई। उनके व्यक्तित्त्व में गंभीर वैचारिकता और सरसता का नैसर्गिक सामंजस्य था। लालाजी अपने कनिष्ठ को हिंदी साहित्य का मुकुटमणि कहते। केशव प्रसाद मिश्र अपने प्रसिद्ध संस्करण में स्वीकार करते कि "आचार्य शुक्ल निसर्ग विशुद्ध भारतीय और संस्कार संसर्गज भारतीय और उपार्जित पाश्चात्य था।....उन्होंने जैसी कुसाग्र बुद्धि पाई थी, वैसा ही भावंतरंगित हृदय भी, पर उनकी भावुकता सदा बुद्धि के प्रकाश में ही पनपती। न तो वे स्वयं बुद्धि-लोक से परे किसी भावलोक की सृष्टि करते और न किसी का वैसा करना पसंद करते।...विश्व विस्तृत बाह्य सौंदर्य को ही वे अगोचर रूपराशि का प्रतीक क्या- सर्वस्व मानते और उस पर रोम-रोम से मुग्ध हो जाया करते। ...किसी प्रकार का छद्म, चाहे वह मानसिक हो, वाचिक हो, व्यावहारिक हो- उन्हें प्रिय न था। वे मानधन और मनस्वी थे। मान आ जाय तो बड़े-बड़े की परवा नहीं, नहीं तो आशुतोष तो थे ही। व्यवहार उनका ऐसा स्निग्ध, ऐसा मधुर, ऐसा सरस था कि मिलने वाला जी खोलकर मिलता और सदा स्मरण रखता। ...उनका हृदय भक्त का हृदय था। वे राम के नाते ही सबसे संबंध जोड़ते।"[1]

आचार्य शुक्ल ऐसे युगविधायक साहित्य-मनीषी थे, जिन्होंने हिंदी को विदेशी मकड़जाल से बाहर निकला और काव्यशास्त्र के संतुलित सिद्धांत स्थिर किये। उन्होंने जायसी, सूर, तुलसी के ग्रंथों के संस्करण तैयार किये और उनकी विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएं लिखीं। ध्यातव्य है कि हिंदी शब्द-सागर की भूमिका के रूप में हिंदी साहित्य का इतिहास उस समय 'हिंदी साहित्य का विकास' शीर्षक से 1929 ई. में प्रकाश में आया था और धीरे-धीरे अलग संस्करण होने पर और बहुत सी बातें बढ़ाई जाती रहीं। सच्चाई यह है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल भारतीय साहित्य के उन मनीषी एवं युगप्रवर्तक समीक्षकों में अन्यतम थे जो अपने गंभीर सृजन के चलते प्राचीन आचार्यों की कोटि में आते हैं। वे हिंदी के युग विधायक आलोचक तो थे ही- आधुनिक भारतीय साहित्य में भी उनकी टक्कर के समीक्षक नहीं हैं। उन्होंने हिंदी के शीर्षस्थ कवियों- जायसी-सूर-तुलसी की तत्त्वान्वेषी समीक्षा द्वारा न केवल हिंदी बल्कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में साहित्य-समीक्षा का विशिष्ट मानदंड स्थिर किया। व्यावहारिक समीक्षा के साथ ही सैद्धांतिक समीक्षा के क्षेत्र में भी उनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान माना गया। विशेषरूप से उन्होंने आधुनिक मनोविज्ञान और समकालीन युग-बोध के परिप्रेक्ष्य में रस-सिद्धांत की नूतन व्याख्या करते हुये उसकी पुनर्प्रतिष्ठा की। शुक्ल जी के विवेचनात्मक निबंध हिंदी की बहुमूल्य संपत्ति है। उनका 'हिंदी साहित्य का इतिहास' हिंदी साहित्य का विश्वकोष भी है। ऐतिहासिक बोध और सूक्ष्म साहित्य-विवेक के समन्वित यह इतिहास भारतीय साहित्य के इतिहासों में अतिविशिष्ट सिद्ध हुआ है। वस्तुतः शुक्ल जी की समीक्षात्मक कृतियों और उनके हिंदी साहित्य का इतिहास

तथा निबंधों को पढ़े बिना हिंदी साहित्य का वास्तविक अवबोध असंभव है। उनकी वजह से हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय को आज भी पूरे देश-विदेश में मान-सम्मान से देखा जाता है।

हिंदी के आदि अध्यापक लाला भगवान 'दीन' और आचार्य शुक्ल जी ने ही मालवीय जी से काशी हिंदू विश्वविद्यालय में खुलने वाले हिंदी विभाग के अध्यक्ष के रूप में बाबू श्यामसुंदर दास के नाम की चर्चा की थी क्योंकि ये तीनों एक साथ नागरी प्रचारिणी सभा में पहले से कार्य कर चुके थे एवं एक दूसरे की योग्यता एवं संगठन-क्षमता से परिचित थे। बाबू साहब यानि श्यामसुंदर दास उस समय तक 'सभा' की गतिविधियों, नागरी प्रचारिणी पत्रिका और 'सरस्वती' आदि के प्रकाशन, हस्तलिखित ग्रंथों की खोज तथा अदालतों में देवनागरी लिपि के लिये चलाये जाने वाले आंदोलन में अपनी सक्रिय सहभागिता, हिंदोस्तानी के स्थान पर हिंदी की प्रतिष्ठा, साहित्य-सम्मेलन की स्थापना, हिंदी शब्द-सागर, हिंदी साहित्य का इतिहास, व्याकरण आदि के प्रकाशन की व्यवस्था के चलते पर्याप्त यश के भागी बन चुके थे। साथ ही कई शैक्षणिक संस्थानों में अध्यापन के साथ-साथ प्रशासनिक दायित्व के अनुभव से भी संपन्न थे। उस समय वह अकेले बी.ए. थे। हिंदी तथा अंग्रेजी बोलने-चालने में निपुण थे। फलतः मालवीय जी ने लोगों से सलाह-मशविरा करके उन्हें हिंदी विभाग का 1921 ई. में अध्यक्ष बना दिया। एम.ए. की प्रारंभिक कक्षाएं चूंकि 1922 ई. से चलने वाली थीं, इसलिये पाठ्यक्रम की तैयारी और पाठ्यपुस्तकों के निर्माण का भी दायित्व हिंदी विभाग पर ही था। स्वयं बाबू श्यामसुंदर दास ने अपनी 'आत्मकहानी' में हिंदी विभाग खोलने से लेकर तत्संबंधी आवश्यक तैयारी, अध्यापकों की नियुक्ति तथा उनके स्वभाव, योग्यता तथा अध्यापन-क्षमता आदि की समवेत रेखांकन किया है। कहना न होगा कि उस समय के इन अध्यापकों का समस्त सृजन विद्यार्थियों के पाठ्यक्रम की आवश्यकता और अपेक्षा के समानांतर हुआ था, इसलिये उनमें सरलता और सादगी है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदी विभाग में मालवीय जी द्वारा नियुक्त किये जाने वाले चौथे अध्यापक थे। ये मिडिल स्कूल के अध्यापक से कानूनगो बने थे और 1923 ई. में उस पद से निवृत्त होने के बाद काशी हिंदू विश्वविद्यालय में समायोजित हुये थे। 77 वर्ष की आयु तक काशी हिंदू विश्वविद्यालय को इनकी सेवाएं मिलीं। वृद्धावस्था के कारण बाद में ये महिला महाविद्यालय में अध्यापन करने लगे थे। इनकी सर्जनात्मकता को लक्ष्य कर मालवीय जी ने उन्हें अपने यहां आहूत किया था। 'प्रिय प्रवास' उनकी कीर्ति का आधार था। उनके सत्प्रयासों तथा पं. श्रीधर पाठक के सहयोग से हिंदी विषयक संभावनाओं के प्रति ब्रजभाषा के वृद्ध आचार्यों में यह विश्वास जन्मा कि खड़ी बोली में भी काव्य-रचना संभव है। हरिऔध जी ने स्वयं काव्य, नाटक, उपन्यास, नीति-ग्रंथ सब कुछ लिखा। एक समय उनके 'ठेठ हिंदी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' ख्यात उपन्यास थे। 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तो आई.सी.एस. की परीक्षा के पाठ्यक्रम में भी सरकार द्वारा स्वीकृत था। हिंदू विश्वविद्यालय में अध्यापन करते समय हरिऔध जी ने कबीर की रचनाओं को 'कबीर वचनावली' में संपादित किया था।

आचार्य केशव प्रसाद मिश्र हिंदी विभाग में 1928 ई. मालवीय जी द्वारा लाये गये ऐसे 5वें अध्यापक थे जो बनारस के सेंट्रल हिंदू स्कूल में छोटी कक्षाओं के विद्यार्थियों को सरल और सुबोध शैली में

इस तरह संस्कृत पढ़ाते कि वे अतिशीघ्र उसे पढ़ने, बोलने और लिखने में दक्ष बन जाते। वे भाषा विद् थे। अनेक भाषाओं के तलस्पर्शी विद्वान थे। शब्दों की व्युत्पत्ति, शब्द-निर्माण और शब्द-प्रयोग में बस एक ही थे। इसके लिये काशी के पंडित उनका लोहा मानते। अपने जमाने के वे मंजे हुये खड़ी बोली के कवि भी थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अत्यंत स्नेह-पात्र थे। उनकी कविताएं सरस्वती, इंद्र, मर्यादा आदि में छपी थीं। केशवजी के रचना-कर्म का प्रमाणिक संग्रह इन पंक्तियों के लेखक का संपादित और समीक्षित एकमात्र ग्रंथ "हिंदी भाषा और साहित्य के सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माता : आचार्य केशव प्रसाद मिश्र" हैं जो नमन प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, वर्ष 2009 में प्रकाशित है। केशवजी 'मेघदूत' के हिंदी काव्यानुवाद के लिये एक समय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल आदि द्वारा अभिवंदित हुये थे। वे अपने संस्मरणों, निबंधों और संपादनों के लिये विद्वानों द्वारा सराहे गये। अपने समय में वे चलते-फिरते कोश कहे जाते। भाषा-विज्ञान जैसे शुष्क विषय भी अत्यंत सरस ढंग से पढ़ाते। जिन्होंने उनसे पढ़ा, अपने को भाग्यशाली माना। उनसे पढ़े लोगों में जो आज शरीर में है- डॉ. रीतिकंठ मिश्र, पूर्व प्राचार्य, डी.ए.वी. कॉलेज, वाराणसी, प्रो. नामवर सिंह, प्रो. रामदरश मिश्र- दिल्ली हैं। केशवजी भाषा-विज्ञान, साहित्यशास्त्र, अपभ्रंश और प्राचीन तथा आधुनिक हिंदी साहित्य के अधिकारी विद्वान थे। उनकी अध्यक्षता के काल में उनके सत्प्रयास से हिंदी विभाग के पाठ्यक्रम में छायावादी कवि और रचनाएं, विशेष रूप से 'कामायनी', 'आँसू', प्रेमचंद का 'गोदान' आदि लगे। 'कामायनी' के अध्यापन का उनका कोई जोड़ नहीं था। वे हिंदी विभाग के अप्रतिम अध्यापक थे जो रचनाओं की तह तक पहुंचते। 2 फरवरी 1941 को आचार्य शुक्ल के देहावसान के बाद उनके स्थान पर आचार्य और अध्यक्ष बने। 1950 ई. के सत्रांत तक इस पद को सुशोभित किया। काशी हिंदू विश्वविद्यालय की उन्होंने 22 वर्षों तक सेवा की और जिन ज्येष्ठ और कनिष्ठ सहयोगियों के साथ उन्होंने अपने अध्यापन की कीर्ति अर्जित की उनमें लालाजी, आचार्य शुक्ल, बाबू साहब, हरिऔध, डॉ. बड़थ्वाल, डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, आचार्य विश्वनाथ मिश्र, आचार्य नंददुलारे बाजपेई, पं. पद्मनारायण आचार्य, डॉ. श्रीकृष्ण लाल, डॉ. विजयशंकर मल्ल, पं. करूणापति त्रिपाठी, डॉ. राजपति दीक्षित एवं छैल बिहारी गुप्त जैसे लोग थे। वे 9 वर्षों तक हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे और पं. गोविंद मालवीय के कुलपतित्त्व में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को अपना उत्तराधिकार सौंपा। केशवजी के बारे में दुःखद पहलू यह रहा कि वे लिखने में बद्धमुष्ठि रहे। उन्होंने अपने ज्ञान और अन्वेषण का सर्वस्व अपने विद्यार्थियों को सौंप दिया, अपनी जगह उन्हें ही प्रकाश में लाने का उद्योग किया। उनकी रचनाशीलता और शोध दृष्टि को अनवरत तराशा।

डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल : लाला भगवानदीन के गोलोकवास के उपरांत उनके स्थान पर छठें अध्यापक के रूप में हिंदी विभाग में नियुक्त होने वाले डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल हिंदी के पहले डी.लिट्. थे। ये नाथसिद्धों, गोरख की बानियों, रामानंद की रचनाओं तथा भारतीय संस्कृति और साधना के विविध पक्षों को प्रकाशित करने, संत साहित्य के साथ हिंदी साहित्य के विविध क्षेत्रों को अपने शोध-समीक्षा से श्रीवृद्ध करने वालों में अन्यतम थे। हिंदी विभाग के आरंभिक अध्यापकों के निकट साहचर्य में जिन शुरूआती विद्यार्थियों ने अपनी साहित्यिक और विवेचनात्मक पटुता से हिंदी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों को समृद्ध किया था, उनमें पं. अयोध्या नाथ शर्मा, लक्ष्मीनारायण सुधांशु, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज', नंददुलारे बाजपेयी आदि

प्रमुख थे, पर इन सबमें डॉ. बड़थ्वाल की शोध-दृष्टि सबसे प्रखर मानी जाती थी। इसीलिये उनके बारे में आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा था- "सन् 1933 ई. में पद्मावत की कहानी और जायसी का अध्यात्मवाद शीर्षक जो एक छोटा सा निबंध बड़थ्वाल ने लिखा था, वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। डॉ. बड़थ्वाल ने सैद्धांतिक विवेचन से अधिक ग्रंथ-संपादन और काव्य-प्रवृत्तियों के स्रोतों की खोजों में अपने को ज्यादा संलग्न किया है। साहित्य-सिद्धांतों की जगह उनके विवेचन में उनकी वृत्ति ज्यादा रची है।[2] बड़थ्वाल जी ने अपने डी.लिट् विषय के रूप में जिस जटिल और नवीन विषय का चुनाव किया था, वह लोगों के लिये चुनौती ही था। उनके बाद हिंदी विभाग में और पांच लोगों को डी.लिट् मिली और बाद में उसका दौर ही समाप्त हो गया। उसकी प्रक्रिया अत्यंत जटिल बना दी गई। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता के काल में हिंदी विभाग में पी-एच.डी. के उच्चस्तरीय शोध प्रबंध सामने आये। फिर बाद में स्तरहीन शोध-प्रबंधों का स्वरूप ही सामने आता गया जो आज बहुत विकृत रूप ले चला है। उस समय डॉ. बड़थ्वाल ने अपना शोध-प्रबंध अंग्रेजी में प्रस्तुत किया था, क्योंकि यही चलन था। बाद में इसका अनुवाद आचार्य परशुराम चतुर्वेदी और डॉ. भगीरथ मिश्र के सौजन्य से 1950 ई. में अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ से हुआ। उस समय इस प्रबंध की प्रशंसा देश-विदेश के चोटी के विद्वानों ने मुक्त कंठ से की जिसमें आदिकालीन हिंदी साहित्य की टूटी कड़ियों को जोड़ने का उपक्रम हुआ था। डॉ. बड़थ्वाल संत साहित्य के दृष्टि संपन्न अध्येता थे तथा 'सभा' में शोध-अनुसंधान में निरंतर लगे रहने से अपने आलोच्य विषय में पूर्णता को प्राप्त थे। सबके लिये जो दुरूह था, उनके सामने खुल चुका था। बड़थ्वाल जी के गुरूद्वय-आचार्य शुक्ल और लालाजी ने भक्तिकाल और रीतिकाल को हिंदी अध्येताओं के लिये अपने सुचिंतित अध्ययन और लेखन से प्रशस्त बना दिया था और रही-सही कसर डॉ. बड़थ्वाल जैसे सुयोग्य एवं मेधावी शिष्य ने हिंदी साहित्य की निर्गुण काव्यधारा के अभिनव विवेचन से पूरी कर दी। निश्चित रूप से ये सभी साधक अपने-अपने क्षेत्रों में युग-निर्माता थे और साहित्य-साधना को एक मिशन के रूप में लेते थे। डॉ. बड़थ्वाल का पठन-पाठन और शोध-अनुसंधान को छोड़कर और कोई दूसरा शगल न था। उन्होंने अनेक पुस्तकों का संपादन तथा उनकी अर्थगर्भ भूमिकाएं लिखीं। बाबू साहब को यह श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने प्रतिभाओं को पहचाना और उनसे कड़े अनुशासन में उनका सर्वोत्तम लिखवा लिया। वे आचार्य शुक्ल हों या डॉ. बड़थ्वाल हों। इन दोनों को कठिन श्रम और अध्यवसाय में तत्पर करने वाले बाबू साहब ही थे। डॉ. शिवमंगल सिंह को डॉ. बड़थ्वाल से पढ़ने का सौभाग्य मिल चुका था और संत-साहित्य विषयक उनकी योग्यता और दृष्टि संपन्नता की उन्होंने बार-बार चर्चा की है। उनका कहना था कि डॉ. साहब कबीर पढ़ाते समय कबीरमय हो जाते थे। डॉ. बड़थ्वाल को हृदय से चाहने वालों में डॉ. चंद्रबली पांडेय और डॉ. हीरालाल जैसे मनस्वी सरस्वती-साधक थे। बाद में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल डॉ. बड़थ्वाल के ही पदचिन्हों पर चले।

डॉ. बड़थ्वाल 8 वर्षों तक काशी में रहे और अपनी साहित्य-साधना का सर्वोत्तम हिंदी साहित्य को दिया। बाद में कुछेक कारणों से लखनऊ विश्वविद्यालय में चले गये, पर वहाँ कभी सुखी नहीं रहे। उनके शोधकार्य का ऐतिहासिक महत्त्व स्वीकार करने वाले विद्वानों में आचार्य शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,

पं. परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. संपूर्णानंद, डॉ. शंभुनाथ सिंह, डॉ. रामविलास शर्मा जैसे लोग रहे हैं। 24 जुलाई 1944 को मात्र 43 वर्ष की आयु में यह सरस्वती पुत्र हमें छोड़ गया।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वर्ष 1937 ई. में हिंदी विभाग में नियुक्त होने वाले आचार्यश्री यहां की आठवीं विभूति थे जो लेखनी के धनी और रीतिकालीन कवियों की ग्रंथावलियों को संपादित तथा उनके दुरूह अर्थों का मर्म खोलने में अत्यंत निपुण थे। ये रीतिमुक्त कवियों के प्रतिष्ठापक माने जाते हैं। घनानंद कवित्त की टीका इनकी अक्षय कीर्ति का स्मारक ग्रंथ है। आचार्य जी भरे कंठ से स्वीकार करते थे कि उनके निर्माण में भगवान रामचंद्र की एकमेक भूमिका है। भगवान से उनका आशय गुरूवर भगवान दीन से होता तो रामचंद्र से आशय रामचंद्र शुक्ल से। पढ़ाते समय अपने छात्र-छात्राओं के समक्ष गुरू-कृपा के स्मरण में उनका रोम-रोम उल्लासित और कृतज्ञता से भीगा होता। उनका आचार्य केशव दास, घनानंद, पद्माकर, भूषण आदि पर लिखा अतिविशिष्ट माना जाता है। इनका 'रामचरितमानस' का काशिराज संस्करण लोगों द्वारा आज भी सम्मानपूर्वक स्मरण किया जाता है जो 'मानस' की समस्त हस्तलिखित पोथियों के आधार पर तैयार किया गया था। हिंदी में आचार्य केशव प्रसाद मिश्र के बाद इनकी गणना अतिविशिष्ट तर्कपुष्ट समग्र अध्यापन के निमित्त की जाती है।

इनसे पढ़ा कोई भी पुरा छात्र अपने को भाग्यशाली मानता है। अध्यापन के क्षेत्र में संप्रेषण की जैसी क्षमता इनमें विद्यमान थी- वह अन्यत्र विरल है। इस तरह के महिमायुक्त अध्यापक, विचारशील शोध-संपादक, सुयोग्य टीकाकार तथा हिंदी भाषा-साहित्य के शीर्षस्थ विद्वान के रूप में हिंदी जगत आज भी उन पर गर्व करता है जिनके चलते विद्यार्थियों की आँखें खुली हैं, सारा कुहासा छंटा है और उनका अंतरबाह्य प्रकाशित हुआ है। इन्होंने जिस विषय को पढ़ाया, अपूर्व ढंग से पढ़ाया। पढ़ाते हुये वे उत्फुल्ल बने रहते। उनका प्रत्युत्पन्नमतित्त्व विलक्षण था। विपरीत परिस्थिति में भी किसी तरह के दैन्य को उन्होंने अपने पास फटकने नहीं दिया। अपनी शब्द-क्रीड़ा और वाग्मिता उन्होंने रीतिकालीन कविता के संसर्ग में पाई थी जिससे वे श्रोता समूह को चकित और विस्मित करते रहते। हिंदी के प्राचीन, मध्यकालीन साहित्य और साहित्यकारों का उन्होंने उद्धार किया। आधुनिक कविता में शिरमौर 'कामायनी' के अध्यापन में उन्हें महारत हासिल थी। प्रो. नामवर सिंह यद्यपि केशवजी के भक्त थे लेकिन मौका पड़ने पर वे आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अध्ययन की समग्रता और स्वच्छता का गुणगान करने से नहीं थकते। वे दो टूक शब्दों में स्वीकारते कि हिंदी में केशवजी के बाद ऐसा अध्यापक कोई दूसरा नहीं हुआ। आचार्य नंददुलारे बाजपेयी ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ "राष्ट्रीय साहित्य और अन्य निबंध" आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को समर्पित करते हुए लिखा है- "जिनका समस्त साहित्यिक लेखन- ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निखरै सी निकाई" को चरितार्थ करता है।[3] आचार्य मिश्र के निष्ठावान पुरातन छात्र डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र खेद के साथ लिखते हैं कि आचार्यश्री अपनी सारी योग्यता और प्रतिभा के बावजूद अपना सही प्राप्य भी हासिल नहीं कर सके। कठोर तपस्या और अर्जित वैदुस्य के बल पर उन्होंने अपने को शीर्ष सम्मान का अधिकारी बनाया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी छात्रवृत्ति प्राप्त करने वाले, हिंदी भाषा और साहित्य का राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मान बढ़ाने वाले को स्वंय अपना विश्वविद्यालय समय पर उनका प्राप्तव्य नहीं दे सका क्योंकि शुचिता और स्वाभिमान का

उनमें इतना कठोर आग्रह था कि निजी स्वार्थ के लिये राजसत्ता के आनुकूल्य का कभी लाभ उठाना उन्हें स्वीकार न हुआ। आचार्यत्व की मर्यादा की उन्होंने सर्वदा रक्षा की। नरेश मेहता उनके शिष्य थे और उन्हें 'ऋषिकल्प आचार्य' कहते। मिश्रजी किसी छात्र की योग्यता का मूल्यांकन विवेक और धर्मबुद्धि की तुला पर करते रहे। अपनी न्यायनिष्ठा के वे अप्रतिम प्रतिमान थे। आचार्य शिवपूजन सहाय के समक्ष श्रद्धा से झुकते और मानते कि साधक संतों से साहित्यिक संत का महत्त्व किसी भी प्रकार कम नहीं होता। दोनों ही समान रूप से अपनी साधना से समाधि को प्राप्त होते हैं।[4]

हिंदू विश्वविद्यालय में जुलाई 1950 से 1960 तक लगभग बसंत की तरह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का यशस्वी कार्यकाल रहा, शोध-अनुसंधान, सर्जना के क्षेत्रों में यह विभाग पूर्णरूप से विकसित हुआ पर उनके चंडीगढ़ चले जाने के बाद उनके अनेक प्रातिम और सहयोगी-शिष्य-प्रशिष्य बाहर आश्रय ढूंढने के लिये विवश हुए और अपने मूल से उनका संबंध-विच्छेद हुआ। मसलन हिंदी के अद्वितीय आचार्य मिश्र को मगध का मुँह जोहना पड़ा, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ. रामदरश मिश्र, केदारनाथ सिंह, डॉ. विष्णु स्वरूप, डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी जैसे अधीन विद्वानों को आजीविका के लिये भटकना पड़ा, पर संतोष यह है कि वे जहाँ भी गये अपनी प्रतिभा और विद्या से हिंदी विभाग का, हिंदू विश्वविद्यालय का मान-सम्मान बढ़ाया। इनके जाने के बाद पूरे विभाग को अपने विद्या-वैभव और शील-सौजन्य से आत्मीयता के धागे में बांधने वाले न रहे।

आज वही विभाग है जहाँ के अध्यापक-अध्यापिकाएं पर्याप्त संसाधनों से परिपूर्ण हैं, अपने श्रम और साधना की तुलना में बढ़-चढ़कर पारितोषिक प्राप्त करते हैं, पर भीतर से, अपने स्वकर्म से सुख-शांति का अनुभव नहीं करते। यह दुःखद है। विश्वविद्यालयीय आचार्य का पद और उसकी देश और समाज में प्रतिष्ठा असमानांतर महत्त्व की है। शोध और अनुसंधान तथा सर्जना का सुख पहले के आचार्य अनुभव कर चुके हैं, पर यदि हम नहीं कर पा रहे हैं तो शताब्दी वर्ष पर इस विभाग से किसी भी रूप में जुड़े हम लोगों के आत्म-मंथन का यह गंभीर विषय होना चाहिये।

एंडनोट्स

---

[1] मिश्र, केशव. प्रसाद. द्रष्टव्य. हिंदी के सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माता. दिल्ली: नमन प्रकाशन. संपादक-समीक्षक राय, प्रो. महेंद्र. नाथ. (2009). हिंदी विभाग. काशी हिंदू विश्वविद्यालय.

[2] सिंह, डॉ. शंभुनाथ. हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास. 13वां भाग. आलेख- पृ. 188.

[3] उपाध्याय, आचार्य. बलदेव. द्रष्टव्य : काशी की पांडित्य-परंपरा. पृ. 750

[4] मिश्र, डॉ. कृष्ण. विहारी. द्रष्टव्य : नेह के नाते. कलकत्ता.

ISSN : 2395-7468

भारत की आर्थिक नीति और दलितों की स्थिति
(तुलनात्मक अध्ययन)

डॉ. विकास कुमार एवं डॉ. एस. राधाकृष्णन्[1]

मानव जीवन में आर्थिक व्यवस्था सेतु का कार्य करती है। इतिहास इस तथ्य का साक्षी रहा है कि किसी भी युग में अधिकतर गतिविधियां अर्थ विचार एवं धन प्राप्ति से संचालित होती रही है। आज हम एक ऐसे युग व वातावरण में पहुंच चुके हैं, जहां आर्थिक शक्तियां एवं आर्थिक उपलब्धियां मन को आंतकित किए हुए है। आर्थिक दबाव के कारण ही, आज भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन इस नई आर्थिक नीतियों के आयाम है। इस नई आर्थिक नीतियों की व्याख्या करने के पहले हम दलितों की आर्थिक नीतियों में भीमराव अंबेडकर की योगदान की चर्चा करेंगे, क्योंकि भारत की नई आर्थिक नीति, इस नीति की आधार पर खड़ी हुई है।

रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के डॉ. नरेंद्र जाघव के इस दावे ने मुझे उस समय स्तब्ध कर दिया, जिस समय सभी प्रगतिवादी उदारीकरण के एक भाग के रूप में अवमूल्यन का स्वतः ही विरोध करते प्रतित हो रहे थे। किंतु दलित पृष्ठभूमि के ये अत्यधिक उच्च पदासिन अर्थशास्त्री जबकि उदारीकरण के समर्थक थे, अन्य लोग यह तर्क करने में उतने ही उतेजित थे कि “नई आर्थिक नीति दलितों को निष्ठुर रूप से प्रभावित करेगी क्योंकि अत्यावश्यक आरक्षण वैयक्तिकरण में खो जाएंगे और सामाजिक व्यय में कटौती ग्रामीण गरीबों पर सर्वाधिक आघात करेगी।[1] जबकि कुछ अन्य ने तर्क किया है कि विश्व अर्थव्यवस्था में सहभागिता मोहनजोदड़ो काल से ही दलित वंश परंपरा का एक भाग रही है, जबकि आर्य ब्राह्मण एवं उनके उत्तराधिकारी एक बन्द अर्थव्यवस्था को पसंद करते हैं।

भीमराव अंबेडकर ने अपने अनुयायिओं के लिए अर्थशास्त्र में अपनी उपाधि “बाबा साहब” कोलंबिया विश्वविद्यालय से प्राप्त की थी। घटनाओं से भरे हुए राजनीतिक जीवन के बावजूद उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखने का समय निकाला, जिनमें से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सिद्धांत से संबंधित है। बौद्धिक विमर्श के इन दिनों में क्या हम मार्क्सवादी परंपरा की अपेक्षा दलित परंपरा से, कोई मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते है, इसलिए हम अंबेडकर की सिद्धांत निर्माण की विवेचना करते है।[2]

अंबेडकर का आर्थिक सिद्धांत: आर्थिक परंपरावाद का स्तर

अंबेडकर मार्क्स से भी अधिक प्राथमिक रूप से एक राजनीतिक सक्रियतावादी थे, बाबा साहब का आर्थिक चिंतन तीन स्तरों से होकर गुजरा। पहला स्तर- 1920 के दशक में उनके प्रारंभिक, बौद्धिक अधिक लेखनों में था, जिसने ब्रिटिश शासन के कठोर साम्राज्यवाद विरोधी किंतु उचित रूप से पुरातन पंथी उदारवादी आर्थिक मूल्यांकन को प्रस्तुत किया। दूसरा स्तर-1930-40 के दशकों में था, जब उस समय के

[1]पोस्ट डॉक्टोरल फेलो (यू.जी.सी., नई दिल्ली), समाजशास्त्र विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
Email : kumarvikash20@ymail.com

सामाजिक एवं राष्ट्रीय आंदोलन में एक केंद्रीय व्यक्ति के रूप में वे अर्थशास्त्र में अंबेडकर ने एक प्रकार की "द्वैत व्यवस्थाओं" के उपागम का प्रयोग किया, जिसमें ब्राह्मणवाद एवं पूंजीवाद को शोषण की समरूप व्यवस्थाओं के रूप में देखा गया था।[3]

तीसरी कालावधि- जाति, हिंदुत्व एवं बौद्ध मत पर उनकी ऐतिहासिक खोजों द्वारा चिन्हित तीसरी कालावधि उनके जीवन के अंत के निकट की थी, जब उन्होंने बौद्ध दर्शन का पूर्ण विकल्प खोज लिया।

"दि प्रॉब्लम ऑफ दि रूपी" (तदैव) ही वह पुस्तक थी जो नरेंद्र जाघव के इस दावे को उचित ठहराती है कि अंबेडकर ने अवमूल्यन विवाद पर विचार किया है। उस समय भारतीय पूंजीपति वर्ग ही पौंड के विरूद्ध अल्प रुपया चाहता था, जबकि ब्रिटिश अधिकारी तंत्र एक उच्च रुपया (पौंड के विरूद्ध अधिक) चाहता था। कुल मिलाकर, अंबेडकर ने काफी अधिक परंपरागत आर्थिक चिंतन का अनुसरण किया।[4]

ब्राह्मणवाद एवं पूंजीवाद का विरोध

अंबेडकर ने आर्थिक परंपरावाद के द्वितीय कालावधि 1930 एवं 1940 के दशकों में एक व्यापक जन उमड़ाव, महान मंदी के दबावों की स्पष्ट रूप से सफल आर्थिक प्रगति व इसमें उत्पन्न श्रमिक वर्ग के उक्त सुधारवाद के प्रभाव से वे वामपंथ की ओर मुड़ गए। यह वही कालावधि थी, जब उनकी दलित आधारित इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी, कृषकों एवं श्रमिकों को संगठित करने के लिए साम्यवादियों के साथ मिल गई और उन्होंने इसे "पूंजीवाद" एवं "ब्राह्मणवाद" दोनों के विरूद्ध होने वाले संघर्ष के रूप में सूत्रबद्ध किया। अंबेडकर ने 1938 में दलित रेलवे श्रमिकों के सम्मेलन में उन्होंने कहाँ-

"मेरी दृष्टि में दो दुश्मन है जिनका इस देश के श्रमिकों को सामना करना होगा। ये दो दुश्मन है ब्राह्मणवाद एवं पूंजीवाद से मेरा तात्पर्य एक समुदाय के रूप में ब्राह्मणों की शक्ति, विशेषाधिकारों एवं स्वार्थों से नहीं है। स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व की आत्मा को नकारने से है। इस अर्थ में यह सभी वर्गों में प्रचलित है, और केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित नहीं है, हालांकि इसके जन्मदाता वे ही है।"[5]

ब्राह्मणवाद एवं पूंजीवाद की "द्वैत व्यवस्थाओं" के साथ, फिर भी अनेक समस्याएं थी। वह स्वयं "स्टेट एंड माइनोरिटीज" में स्पष्ट हो गया, जिसमें ऐसा प्रतित होता है कि दो विषम खंड है। एक भूमिका राष्ट्रीयकरण एवं राज्य समाजवाद की वकालत करता हुआ और दूसरा दलितों के लिए पृथक ग्रामीण बस्तियों की मांग करता हुआ। इन दोनों के बीच का संबंध स्पष्ट नहीं था। दुसरे शब्दों में, द्वैत व्यवस्थाओं का सिद्धांत एक एकीकृत, साम्यवादी व्याख्या प्रस्तुत नहीं कर सका। इसने मार्क्सवाद के साथ-साथ अंबेडकर की प्रारंभिक भिड़ंत को प्रतिबिंबित किया, जब उन्होंने इसको बलपूर्वक कहा कि "जाति" को एक वर्ग उपागम के साथ जोड़ना चाहिए किंतु एक समग्र वैकल्पिक सिद्धांत का विकास नहीं किया।[6]

इस प्रकार, हमें बुद्ध अथवा कार्ल-मार्क्स से बहुत अधिक अर्थ निकालने का प्रयास नहीं करना चाहिए, यह अधिकतम रूप में आर्थिक चिंतन की एक दिशा उपलब्ध कराती है, किंतु किसी भी प्रकार

पूर्णतया विकसित एक आर्थिक सिद्धांत यह नहीं प्रस्तुत करता है। क्या अंबेडकर ने वैयक्तिकरण का विरोध किया होता अथवा उदारीकरण का समर्थन किया होता? इस स्तर पर वक्तव्य काफी अंशों में अनुमान मात्र रह जाते है। किंतु ऐसा प्रतित होता है कि उनके उपागम का एक बड़ा भाग व्यावहारिक ही होता, राज्य, बाजार एवं समुदाय की सर्वाधिक प्रभावकारी सम्मिश्रण को खोजता हुआ, कि वे ऐसे वैश्वीकरण के स्पष्ट रूप से पक्षधर होते जो दलितों एवं अन्य निर्धन वर्गों को एक विश्वपरंपरा में उनका पूर्ण स्थान स्थापित करने में सहायक होता, क्योंकि वे दोनों ही सर्वांगिण आर्थिक विकास तथा समुदाय के निर्धनतम एवं सर्वाधिक वंचित भागों पर इसके प्रभार के विषय में चिंतित होते। वे संपत्ति के अधिकारों का दमन करने के लिए राज्य शक्ति के उपयोग की अवसरिक आवश्यकता को अस्वीकार नहीं करते, वे धनार्जन को एक बुराई के रूप में नहीं वरन् संपत्ति निर्माण की प्रक्रिया के एक भाग के रूप में देखते और वे महत्त्वपूर्ण मामलों के एक समुदाय में ऐच्छिक सहभाजन को समानता प्राप्त करने में प्राथमिक साधन के रूप में देखते है।

नयी आर्थिक नीति और उसका दलित वर्ग पर प्रभाव

उन्नसवी शताब्दी में पूंजीवाद, व्यक्तिवाद व व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बोलबाला रहा, और अधिकांश राष्ट्र "उन्मुक्त व्यापार नीति" व "आर्थिक स्वतंत्रता" के समर्थक रहे, किंतु पिछली अर्द्धशताब्दी में रूसी क्रांति, विश्वव्यापी आर्थिक मंदी, तकनीकि प्रगति, सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के कारण राष्ट्रों ने आर्थिक नियोजन का महत्त्व समझा और नियोजित अर्थव्यवस्था अपनाने पर जोर दिया। इस प्रकार, वर्तमान युग "नियोजन का युग" है और विश्व में लगभग सभी देश अपने विकास व उन्नति के लिए आर्थिक नियोजन से जुटे हुए है।

भारत ने देश की निर्धनता, विभाजन से उत्पन्न आर्थिक असंतुलन तथा समस्याएं, बेरोजगारी की समस्याएं, औद्योगीकरण की आवश्यकता सामाजिक तथा आर्थिक विषमताएं, धीमी गति से विकास, विस्फोटक जनसंख्या आदि कई कारणों से इन समस्याओं का निवारण व देश के समुचित आर्थिक विकास के लिए आर्थिक नियोजन की अवधारणा को स्वीकार किया।

आर्थिक नियोजन का उद्देश्य था- आर्थिक समानता, अवसर की समानता, अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार तथा अविकसित क्षेत्रों का विकास। आय की समानता धनी वर्ग से अधिक कर द्वारा प्राप्त आय को निर्धन वर्ग को सस्ती सेवाएं- चिकित्सा, शिक्षा, सामाजिक बीमा, सस्ते मकान आदि की सुविधाएं उपलब्ध कराने पर व्यय करके ही की जा सकती है, राष्ट्र के समस्त नागरिकों को जीवकोपार्जन के समान अवसर प्रदान करके असमानता को दूर किया जा सकता है। रोजगार उपलब्ध कराना भी नियोजन का उद्देश्य है, नियोजन द्वारा राष्ट्र के समस्त कार्य योग्य नागरिकों के लिए रोजगार का प्रबंध करना भी आवश्यक है। संपूर्ण राष्ट्र के जीवनस्तर में समानता स्थापित करने हेतु राष्ट्र के अविकसित तथा अर्द्धविकसित क्षेत्रों को राष्ट्र के अन्य उन्नत क्षेत्रों के समान करना भी नियोजन का प्रमुख ध्येय था। नियोजन के सामाजिक उद्देश्यों में वर्ग रहित समाज की स्थापना करने का लक्ष्य सम्मानित है।

स्वतंत्र भारत में योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च 1950 को हुई। योजना आयोग के कार्यकलापों को ध्यान में रखते हुए उनमें सरकारी नेताओं तथा विशेषज्ञों दोनों को ही रखना अनिवार्य था, क्योंकि योजना की स्वीकृति तथा क्रियान्विति के लिए राजनेताओं का होना अधिक महत्त्वपूर्ण था। नियोजन का उद्देश्य निर्धारित करते समय देश की परिस्थितियों एवं समस्याओं को ध्यान में रखना होता है। अतः भारत जैसे विकासशील देश के संदर्भ में नियोजन का मुख्य उद्देश्य तीव्र गति से देश का आर्थिक विकास है। इस मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रोजगार में वृद्धि, आर्थिक स्थिरता, आत्मनिर्भरता आदि उद्देश्यों को विभिन्न योजनाओं में पर्याप्त स्थान दिया गया है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं के संबंध में सन् 1991 में दिये गए अनेक नीति विषयक वक्तव्यों ने इस नई आर्थिक नीति को स्पष्ट तथा ठोस रूप प्रदान किया है। इस नई आर्थिक नीति की संभवतः सबसे प्रमुख विशेषता निजी क्षेत्र के विनियमन एवं नियंत्रण में ढील देने से संबंधित है। पुराने नीति के अंतर्गत निजी क्षेत्र के संचालन पर अनेक एवं कड़े प्रतिबंध लगे हुए थे। इन प्रतिबंधों की शिथिलता का प्रभाव पीड़ितों, दलितों के हित में रहा है। इससे समाज के दलित वर्ग के लोगों को कमजोर आर्थिक दशा वालों को मध्यम आय वर्ग के लोगों को भी निवेश, उत्पादन एवं बिक्री आदि के क्षेत्र में अधिक स्वतंत्रतापूर्वक कार्य के अवसर प्राप्त हुए है।

नई आर्थिक नीति के कारण राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ दिया गया है। विदेशी उद्यमियों को निवेश व्यापार तथा तकनीक के क्षेत्र में आकर्षित करने के लिए अनेक उदारपूर्ण सुविधाओं की व्यवस्था की गई है। निर्यात के क्षेत्र में ऐसे कदम उठाये गए है जिससे नये निर्यातक आसानी से प्रवेश कर सके, ताकि प्रतियोगिता बढ़ सके। इस प्रकार, नई आर्थिक नीति ने उन्नत सामाजिक अर्थव्यवस्था को खुला रूप प्रदान किया है। निर्यात को बढ़ाया है। इस प्रकार, नई आर्थिक अर्थव्यवस्था को विकसित करने वाली तथा दलितों का उत्थान करने वाली है।[7]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नई आर्थिक में नियंत्रणों और प्रतिबंधों की प्राचीन परिपाटी से मुक्त निजी क्षेत्र के विस्तारण की प्रवृत्ति को शक्ति प्रदान की गई है। इससे प्रतियोगिता को बल मिला है। इस नीति में तकनीक में सुधार लाने एवं निर्यात संवर्धन के लिए सुविधाओं और बाध्यताओं का भी समावेश हुआ है। इस यह नीति मिश्रित अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा की ओर मोड़ने में समर्थ है। देश को इस दिशा की ओर बढ़ाया जा रहा है, क्योंकि इससे आर्थिक स्तर उन्नत होगा, नई आर्थिक नीति के प्रभाव से उदारीकरण की प्रवृत्ति बढ़ाने से नियंत्रणों के घटने से उत्पादकता बढ़ने से सभी वर्ग के लोगों को अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने का सुअवसर उपलब्ध होगा। व्यापार का विस्तार होगा। लोगों की कार्यकुशलता व कार्यक्षमता बढ़ेगी। उत्पादन बढ़ेगा। आयात-निर्यात बढ़ेगा। काम के सुअवसर बढ़ेंगे। प्रति व्यक्ति आय बढ़ेगा। लोगों का जीवनस्तर ऊंचा होगा। देश विकसित राष्ट्र के रूप में उभरेगा, इसलिए नई आर्थिक नीति 'सर्वजनहिताय, सर्वसुखाय' है। इस नीति से सभी मानव जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर है, वे जन्म से चाहे ब्राह्मण हो, या अस्पृश्य अथवा किसी भी क्षेत्र के हो, अथवा किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय के हो जो निम्न जीवनस्तर के

हो, जो अधम एवं नारकीय जीवनयापन हेतु विवश है, जो गरीबी रेखा के नीचे है या अति गरीब है, जो भी समाज में उचित प्रतिष्ठा एवं सम्मान नहीं पा रहा हो, वे दलित है, शोषित है। इन सभी को नई आर्थिक नीति के द्वारा आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति में वृद्धि होगी।

संदर्भ ग्रंथ

1. अंबेडकर, बी. आर. (1918). स्मॉल होल्डिंग्स इन इंडिया एंड देयर रेमेडीज. जर्नल ऑफ इंडियन इकोनॉमिक सोसाइटी. अंक-1, पुनमुर्दित, अंबेडकर, डॉ. बाबा. साहब. (1979). राइटिंग्स एंड स्पीचेज. (1).
2. अंबेडकर, बी. आर. (1979). डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर राइटिंग्स एंड स्पीचेज. खंड-1, बाम्बे गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र.
3. डोगरे, एम. के. (1974). इकोनॉमिक थॉट्स ऑफ डॉ. बी. आर. अंबेडकर, अंबेडकर समाज. नागपुर.
4. अहिर, डी. सी. (1972). डॉ. अंबेडकर एंड इंडियन कान्स्ट्रयूिशन. बुद्ध विहार. लखनऊ.
5. दि टाइम्स ऑफ इंडिया, (1938, जनवरी 14) में प्रतिवेदित।
6. वही.
7. सिंह, आर. जी. (1986). भारतीय दलितों की समस्याएं एवं उनका समाधान. मध्यप्रदेश: हिंदी ग्रंथ अकादमी भोपाल.

ISSN : 2395-7468

महामना का गो-पालन चिंतन

प्रो. दिनेश चंद्र राय[1]

"यदि हम गायों की रक्षा करेंगे तो गाय हमारी रक्षा करेंगी"

- पंडित मदन मोहन मालवीय

भारत रत्न पंडित मदन मोहन मालवीय एक महान विद्वान, शिक्षाविद् एवं राष्ट्रीय आंदोलन के नेता थे। उन्होंने वर्ष 1906 में हिंदू महासभा की स्थापना की और 4 फरवरी, सन् 1916 ई. (माघ शुक्ल प्रतिपदा, संवत् 1972) काशी में, बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी, की स्थापना की। मालवीय जी का देशप्रेम, क्रियाशक्ति, बुद्धि, संकल्प तथा तप और त्याग साक्षात् काशी विश्वविद्यालय के रूप में मूर्तिमान हुआ। विश्वविद्यायल के उद्देश्यों में संसार के हित के लिये भारत की विविध विद्याओं, कलाओं, कृषि, चिकित्सा और प्रौद्योगिकी की शिक्षा को प्राथमिकता दी गई। उसके विशाल तथा भव्य भवनों एवं विश्वनाथ मंदिर में भारतीय स्थापत्य कला के अलंकरण भी मालवीय जी के आदर्श के ही प्रतिफल हैं। उनकी 153वीं जयंती के एक दिन पहले, 24 दिसंबर, 2014 को उन्हें (मरणोपरांत) भारत के सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार, भारत रत्न से सम्मानित किया गया।

उन्होंने जनबल तथा मनोबल में नित्यशः क्षयशील हिंदू तथा हिंदू संगठन का शिाक्तशाली आंदोलन चलाया और स्वयं अनुदार सहधर्मियों के तीव्र प्रतिवाद झेलते हुए भी कलकत्ता, काशी, प्रयाग और नासिक में भंगियों को धर्मोपदेश और मंत्रदीक्षा दी। करूणामय हृदय, भूतानुकंपा, मनुष्यमात्र में अद्वेष, शरीर, मन और वाणी के संयम, धर्म और देश के लिये सर्वस्व त्याग, उत्साह और धैर्य, नैराश्यपूर्ण परिस्थितियों में भी आत्मविश्वासपूर्वक दूसरों को असंभव प्रतीत होने वाले कर्मो का संपादन, वेशभूषा और आचार विचार में मालवीय जी भारतीय संस्कृति के प्रतीक तथा ऋषियों के प्रणवान स्मारक थे।

मालवीय जी को ऋषिकुल हरिद्वार, गोरक्षा और आयुर्वेद सम्मेलन, सेवा समिति तथा अन्य कई संस्थाओं को स्थापित अथवा प्रोत्साहित करने का श्रेय प्राप्त है। गोवंश संरक्षण और संवर्द्धन के लिए पंडित मदनमोहन मालवीय ने वर्ष 1935 में मथुरा-वृंदावन मार्ग पर हासानंद गोचर भूमि की स्थापना कर एक हजार एकड़ भूमि को गोचारण के लिए दान दिया। गोचरभूमि ट्रस्ट के ट्रस्टी, महामना मदन मोहन मालवीय के पौत्र और इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश गिरधर मालवीय ने बताया कि महामना के पुण्यमय प्रयासों का परिणाम यह गोचरभूमि आज ब्रज की अग्रणी गोशाला के रूप में प्रतिष्ठित है। यहां हजारों गायों की सेवा होती है। गोचर भूमि के लिए महामना द्वारा दान दी गई एक हजार एकड़ भूमि आज भी गोवंश संरक्षण के क्षेत्र में उनके अविस्मरणीय योगदान को स्मरण करा रही है।

[1] पशु पालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी.

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के परिसर में मलीवीय जी द्वारा 1946 में गौशाला की स्थापना की गई। मालवीय जी का विचार था कि "भारत के लिए वह परम सौभाग्य का दिन होगा, जब देश के कोने-कोने में गौ संस्थाएँ होगी, जिसका मुख्य काम होगा जन सामान्य को शुद्ध एवं सस्ता दूध पहुंचाना"। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों, कर्मचारियों एवं अध्यापको को पशुपालन एव दुग्ध विज्ञान की जानकारी के साथ-साथ शुद्ध दूध मिल सके। इसी क्रम में सन् 1981 ई. में कृषि विज्ञान संस्थान के अंतर्गत पशुपालन एव दुग्ध विज्ञान विभाग की स्थापना की गई।

गाय भारत देश की सांस्कृतिक और आर्थिक बुनियाद है। हिंदू धर्म में यह विश्वास है कि गाय देवत्त्व और प्राकृतिक कृपा की प्रतिनिधि है, हिंदू धर्म में गाय को माँ (गौ माता) कहते है और गाय की पूजा मूल आरंभिक वैदिक काल से की जा रही है। महाभारत व मनुस्मृति और ऋग्वेद में दुधारू गाय को पहले से ही 'अवध्य' कहा गया था। गाय को अग्रेजी में 'Cow' वैज्ञानिक नाम बोस टौरस 'Bos Taurus' कहा जाता है। इससे हमें उत्तम किस्म का दूध प्राप्त होता है। रेड सिंधी, साहिवाल, गिर, देवनी, थारपार्कर आदि नस्लें भारत में गायों की प्रमुख नस्लें हैं। भारत में गाय की 32 नस्लें पायी जाती हैं।

गाय की पूज्यता का संकेत इसके उत्पादों का विभिन्न संस्कारों में प्रयोग एव औषधि शुद्धिकरण में पंचगव्य (गाय के पांच उत्पाद, दूध, दही, मक्खन, मुत्र और गोबर) के प्रयोग से मिलता हैं। इस तथ्य के आधार पर कि उसके उत्पाद पोषण प्रदान करते है। गाय को मातृत्त्व और धरती माँ से भी संबंध किया गया।

धार्मिक महत्त्व

धार्मिक मान्यताओं के अनुसार गाय के शरीर में 33 करोड़ देवता वास हैं और इनकी सेवा करने से एक साथ 33 करोड़ देवता प्रसन्न होते हैं। इंद्र मनोकामना पूर्ण करने वाली गाय, कामधेनु के निकट से संबंध, कृष्ण अपनी युवा अवस्था में एक ग्वाले के रूप में जाने जाते हैं। मालवीय जी का सनातन धर्म व हिंदू संस्कृति की रक्षा और संवर्धन में योगदान अनन्य हैं।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रकमन् सीदंतु गोष्मेरणयंत्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इहस्स्युरिंद्राय पूर्वीरुष्सोदुहानाः।।
यूयं गावो में दयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्र गृह कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु।।

भगवान कृष्ण ने श्रीमत भगवत गीता में कहा है 'धेनुनामसिम मैं गायों में कामधेनु हूं। कामधेनू का वर्णन पौराणिक गाथाओ में एक ऐसी चमत्कारी गाय के रूप में मिलता है जिसमें दैवीय शक्तियाँ थी और जिसके दर्शन मात्र से ही लोगों के दुखः व पीड़ा दूर हो जाती थी, या कामधेनु जिसके पास होती थी उसे हर तरह से चमत्कारिक लाभ होता था। उसका दूध अमृत के समान था। देवताओं में भगवान विष्णु, सरोवरों में समुद्र, नदियों में गंगा, पर्वतों में हिमालय, भक्तों में नारद, सभी पुरियों में कैलाश, संपूर्ण क्षेत्रों में केदार जो क्षेत्र

के प्रकार से श्रेष्ठ है, उसी प्रकार गायो में कामधेनु सर्वश्रेष्ठ हैं। कामधेनु सबका पालन करने वाली हैं। माता स्वरूपिणी है, सब इच्छाएं पूर्ण करने वाली हैं। महर्षि वशिष्ट के आश्रम में भी कामधेनु उनकी समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करती थीं। विश्वामित्र इसी कामधेनु को प्रात्र करने के लिए वशिष्ठ पर नारायणस्त्र, ब्रहमास्त्र व पाशुपतास्त्र का संधान किया था परंतु कामधेनु के आशीष से सभी अस्त्र-शस्त्र निर्मूल सिद्ध हुए थे।

सामाजिक महत्त्व

19वीं शताब्दी के बाद के दशकों में विशेषकर उत्तरी भारत में एक गो रक्षा आंदोलन शुरू हुआ, जिसने हिंदुओं को एकीकृत करने और एक समूह के रूप में उन्हें मुसलमानों से अलग करने का प्रयास यह मांग करके किया कि सरकार गो-हत्या पर प्रतिबंध लगाए। राजनीतिक और धार्मिक उद्देश्यों का यह घालमेल समय-समय पर कई दंगों का कारण बना।

हिन्दू धर्म के अनुसार गाय की हत्या को ब्रह्म हत्या जैसा निंदनीय कार्य माना जाता है। ईसा शताब्दी में गुप्त वंश के राजाओं द्वारा गाय की हत्या करने पर मृत्युदंड का प्रवाधान किया गया था।

पं. मदन मोहन मालवीय जी के अनुसार "भारतीय संविधान में सबसे पहली धारा संपूर्ण गौवंश हत्या निषेध की बने"। गाय निर्बल दीन-हीन जीवों का प्रतिनिधित्त्व करती है, सरलता, शुद्धता और सात्विकता की मूर्ति है। गौ माता की पीठ में ब्रह्मा, गले में विष्णु और मुख में रुद्र निवास करते हैं, मध्य भाग में सभी देवगण और रोम रोम में सभी 'महर्षि' बसते हैं। श्रीकृष्ण को हम गोपाल कृष्ण, गोविंद कहते हैं। गाय पृथ्वी, ब्राह्मण और देव की प्रतीक है। गौ रक्षा और गौ संवर्धन हिंदुओं के आवश्यक कर्तव्य माने जाते हैं। सभी दानों में 'गोदान' का महत्त्व सर्वाधिक माना जाता है।

हिंदू संस्कृति के अनुसार जिस घर में गाय निवास करती हैं एवं जहां गौ सेवा होती है, उस घर से समस्त समस्याएँ कोसों दूर रहती हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार गाय को अपनी माता के समान सम्मान दिया जाता हैं इसलिए गाय को गौ-माता कहकर पुकारते हैं।

औषधीय महत्त्व

हिंदू धर्म में गाय के दूध को अमृत तुल्य माना जाता है और वास्तव में है भी, गाय का दूध सब से ज्यादा पौष्टिक एवं पाचक होता है, जो माँ अपने नवजात बच्चों को अपना दूध पिलाने में असमर्थ होती है, तो उन नवजात बच्चों को गाय का दूध ही पिलाया जाता है क्योकि गाय का दूध इतना सुपाच्चय और हल्का होता है कि उसको छोटा बच्चा भी पचा लेता है।

दूध पियो कसरत करो, नित्य जयो हरिनाम।
मन लगाई विद्या पढ़ो, पूरेगें सब काम॥

-पंडित मदन मोहन मालवीय

- गाय का दूध अमृत के समान है, गाय से प्राप्त दूध, घी, मक्खन से मानव शरीर पुष्ट बनता है।
- गाय के गोबर का प्रयोग चुल्हें बनाने, आंगन लीपने एवं मंगल कार्यो में लिया जाता है, और यहाँ तक कि गाय के मूत्र से भी विभिन्न प्रकार की दवाईयां बनाई जाती है।
- गाय के मूत्र में कैंसर, टीवी जैसे गंभीर रोगों से लड़ने की क्षमता होती हैं, जिसे वैज्ञानिक भी मान चुके है, तथा गौ-मूत्र के सेवन करने से पेट के सभी विकार दूर होते हैं।
- ज्योतिष शास्त्र में भी नव ग्रहों के अशुभ प्रभाव से मुक्ति पाने के लिए गाय का ही वर्णन किया गया हैं।
- यदि बच्चे को बचपन में गाय का दूध पिलाया जाए तो बच्चे की बुद्धि कुशाग्र होती हैं।
- हाथ-पांव में जलन होने पर गाय के घी से मालिश करने पर आराम मिलेगा।
- जल जाने वाले स्थान या घाव को पानी से धोकर गाय का घी लगाने से फफोले कम हो जाते हैं और जलन कम हो जाती हैं।
- बच्चों को सर्दी या कफ की शिकायत हो जाए तो गाय के घी से छाती और पीठ पर मालिश करने से तुरंत आराम मिलता है।
- किसी मनुष्य को अगर हिचकी आये तो उसे रोकने के लिये आधा चम्मच गाय का घी पिलाने से हिचकी रूक जाती है।
- गाय के मूत्र में पोटेशियम, सोडियम, नाइट्रोजन, फास्फेट, यूरिया, यूरिक एसिड होता है, दूध देते समय गाय के मूत्र में लेक्टोज की वृद्धि होती है। जो हृदय रोगों के लिए लाभकारी हैं।
- गाय का दूध शक्तिशाली होता है उसे पीने से मोटापा नहीं बढ़ता तथा स्त्रियों के प्रदर रोग आदि में लाभ होता हे। गाय के गोबर के कंडे से धुआं करने पर कीटाणु, मच्छर आदि भाग जाते हैं तथा दुर्गंध का नाश होता है।
- गाय के समीप जाने से ही संक्रामक रोग कफ सर्दी, खांसी, जुकाम का नाश हो जाता है। गौ मूत्र का एक पाव रोज़ सुबह ख़ाली पेट सेवन करने से कैंसर जैसा रोग भी नष्ट हो जाता है।
- गाय के गोबर में विटामिन बी-12 प्रचुर मात्रा मंे पाया जाता है। यह रेडियोधर्मिता को भी सोख लेता है।
- कृषि में गाय के गोबर की खाद्य, औषधि और उद्योगों से पर्यावरण में क़ाफी सुधार है। जुताई करते समय गिरने वाले गोबर और गौमूत्र से भूमि में स्वतः खाद डलती जाती है।

आर्थिक महत्त्व

गौ रक्षा का मामला देश के आर्थिक विकास से जुड़ा है। भैंस की तुलना में गाय के दूध में पौष्टिक तत्त्व ज्यादा होते हैं।

गाय भारतीय अर्थव्यवस्था से जुड़ी रही है। पशुपालक बहुत कम खर्चे में गाय का पालन कर लेते हैं, हिंदू धर्म में गाय को कामधेनु कहा जाता है।

"गौ-दुग्ध के बिना राष्ट्र की संतानो का समुचित सिंचन व विकास नहीं हो सकता। संतानों के कुपोषित होने से राष्ट्र का वर्तमान एवं भविष्य दोनों कमजोर होगा।"

-पंडित मदन मोहन मालवीय

- आज गौ पालन से देश में करोड़ों लोगों को रोजगार प्राप्त होता है।
- वर्तमान समय में भारत दुग्ध उत्पादन में विश्व के शीर्ष स्थान पर विद्यमान है। भारत का कुल दुग्ध उत्पादन 1460 लाख टन है व विश्व के कुल दुग्ध उत्पादन में 18% का योगदान दे रहा है।
- भारत वर्ष के कुल सकल घरेलू उत्पाद में पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान का 5% का योगदान है जोकि कृषि क्षेत्र का लगभग 30% है।
- भारत वर्ष में कुल गौधन 1930 लाख है जोकि विश्व गौधन संख्या का एक चौथाई है।
- भारत के कुल दुग्ध उत्पादन में गौवंश का लगभग 40% का अमूल्य योगदान है।
- पशु पालन उद्योग एवं दुग्ध उत्पाद के निर्यात से भारत को करोड़ों रुपए की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।
- चाय, कॉफी जैसी लोकप्रिय पेय पदार्थों में दूध एक जरूरी पदार्थ है, भारत में ऐसी अनेक मिठाईयां हैं जो गौ दूध पर आधारित होती है। दही, मक्खन और घी भारतीय भोजन के आवश्यक अंग हैं।
- घी में तले व्यंजनों का स्वाद अप्रतिम होता है। छाछ न केवल प्यास बुझाती हैं बल्की बहुत से प्रचलित व्यंजनों का आधार है।

पंडित मदन मोहन मालवीय जी ऐसे युगपुरुष हैं, जिन्होने लोक जीवन की पवित्रता और प्रामणिकता के लिए हर उस साधन पर ध्यान दिया जो शक्ति और ऊर्जा प्रदान करता रहा है। मालवीय जी ने हिंदू आस्था के बल को पहचाना। उनको गंगा, गाय एवं गणेश में केवल धार्मिक निहित ऊर्जा का उन्हें पता था। इसलिए वह गंगा एवं गाय की चिंता जीवनभर करते रहे। मालवीयजी को गौ-रक्षा, गौ-पालन एवं दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में अमूल्य योगदान के लिए सदैव जाना जाता रहेगा।

बाज़ार की भाषा और भाषा का बाज़ारीकरण
(हिंदी : विकास, विमर्श और प्रतिमानीकरण)

प्रभाकर सिंह[1]

सोलहवीं-सत्रहवीं सदियों में उत्तर भारत के बिखरे हुए बाज़ार एक दूसरे से संबद्ध हुए। यूरोप के व्यापारी अवध का बना हुआ कपड़ा आगरे में खरीदते थे। यूरोपीय यात्रियों के अनुसार सत्रहवीं सदी में आगरे की आबादी छः लाख थी। पेलसोर्ट ने लिखा था कि गुजरात, सिंध, लाहौर, दकन हर तरफ का माल आगरे से गुजरता है, सड़कों पर बेशुमार माल खासकर सूती माल ढोया जाता है। पटना, बनारस, लखनऊ ये सभी शहर सूती कपड़े के व्यापार-केंद्र थे। मुगल शासन के अंतर्गत, आर्थिक और राजनीतिक दोनों रूपों में वे परस्पर संबद्ध थे। इन बड़े नगरों में आसपास के देहात से जुलाहों की बड़ी तादाद सिमट आती थी। रोटी-रोजी की तलाश में अलग-अलग बोलियां बोलने वाले लोग इन शहरों में इकट्ठा होते थे। इनमें आपस के व्यवहार के लिए किसी सामान्य भाषा की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता को पूरा किया व्यापारी वर्ग से संबद्ध 'खड़ी बोली' ने।

भाषा का विकास साहित्य और संस्कृति से अधिक व्यापार और वाणिज्य से जुड़ा हुआ है। किसी भी समाज में भाषाई विकास की प्रक्रिया अर्थ और व्यापार के विकास के समानांतर ही विकसित होती है। किसी भी देश में सामंती व्यवस्था की सीमायें टूटती हैं, पूंजीवाद का विकास होता है। पूंजीवाद के विकास के साथ वर्णव्यवस्था और सामंती व्यवस्था कमजोर पड़ने लगती है। इस प्रक्रिया में व्यापारी, उत्पादक वर्ग और श्रमिकों की भूमिका अग्रणी होती है। कहना न होगा कि व्यापार और उत्पादन के इस विकास प्रक्रिया में पहले घरेलू और स्थानीय बाज़ार का निर्माण होता है। यों कि यह प्रक्रिया सामंती व्यवस्था में ही चिन्हित की जा सकती है जहां गांवों, कस्बों और छोटें शहरों में छोटे-छोटे बाज़ार और मेले लगते हैं। ये इन विशेष मेलों के अवसर पर दूर-दराज इलाके के व्यापारी आमजन क्रय-विक्रय करते हैं। छोटे-छोटे इन बाज़ारों को मिलाकर एक बड़े बाज़ार का निर्माण होता है। बाज़ार और व्यापार का यह रूप जैसे-जैसे विकसित होता है, बड़ा होता है वैसे-वैसे इसमें व्यापारियों, कारीगरों, किसानों और श्रमिकों की भूमिका अग्रणी होती है। इसी प्रक्रिया में जातीय निर्माण की प्रक्रिया भी घटित होती चलती है। व्यापार के इस प्रसार में जमींदारों और पुरोहितों की भूमिका कमज़ोर पड़ती है। व्यापारी, किसान और कारीगरों की भूमिका अधिक हो जाती है। हिंदी भाषा के जातीय निर्माण और प्रसार में भी यही प्रक्रिया घटित हुई। अवधी, ब्रज और खड़ीबोली के विकास में यही व्यापार, वाणिज्य और बाज़ार का निर्माण मूल में रहा।

जातीय भाषा के रूप में हिंदी और सहवर्ती जनपदीय बोलियां

जातीयता का प्रमुख चिन्ह है भाषा। जाति के निर्माण से भाषा के गठन और विकास का घनिष्ठ संबंध है। दिल्ली के आस-पास के प्रदेश की भाषा क्यों हमारी जातीय भाषा बन गई? कुछ लोग इसके लिए

[1] सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी. मो॰ - 9450623078

विशुद्ध भाषागत कारण ढूढ़ने का प्रयत्न करते हैं। खड़ीबोली में कुछ ऐसे 'गुण' थे जो ब्रज, अवधी आदि में नहीं थे। इसलिए उसने ब्रजभाषा को अपदस्थ कर दिया। इसके विरूद्ध ब्रजभाषा-प्रेमी यह तर्क देते हैं कि ब्रजभाषा के से कवि खड़ीबोली में पैदा ही नहीं हुए; खड़ीबोली ने ब्रजभाषा का हक छीन लिया, यह घोर अनाचार है। जातीय विकास के संदर्भ में इस समस्या को देखने से पता चलेगा कि सामाजिक विकास क्रम में जातीय भाषा के रूप में किसी एक बोली का प्रसार या गठन ऐतिहासिक रूप से अनिवार्य घटना है। इसी तरह ब्रिटेन, रूस, फ्रांस आदि देशों में वहां की जातीय भाषाओं का गठन और प्रसार हुआ। इस प्रक्रिया का आर्थिक आधार व्यापार है। पूंजीवाद का अर्थ उत्पादन की पद्धति-विशेष तक सीमित न करना चाहिए। पुरानी दस्तकारी के आधार पर सामंती व्यवस्था में बेचने और मुनाफा कमाने के लिए क्रय वस्तुओं का उत्पादन होता है। व्यापार बाज़ार का निर्माण करता है। व्यापार के आधार पर बाज़ार के अंतर्गत जितना भी इलाका आ जाय, वह सभी जातीय प्रदेश बने, यह आवश्यक नहीं। स्वाभाविक क्रिया यह है कि जो लघु जातियां भाषा, संस्कृति, इतिहास आदि की दृष्टि से एक-दूसरे के बहुत निकट हैं, वे मिलकर एक महाजाति का निर्माण करें। किंतु इस तरह की लघु जातियां कभी-कभी भिन्न होने पर भी किसी प्रबलतर जाति का अंग बना ली जाती हैं। वेल्स और स्काटलैंड के केल्ट निवासी इसी तरह अंग्रेजों के साथ ब्रिटिश जाति का अंग बनाये गये। किंतु रूस में उक्रैनी जाति ने अखिल रूसी बाज़ार के अंतर्गत रहते हुए भी अपनी जातीयता की रक्षा की। अनेक स्लाव जातियों को जर्मन आक्रमणकारियों ने जर्मन जाति का अंग बना लेने की कोशिश की लेकिन असफल रहे। जातीयता की रक्षा जाति विशेष के प्रतिरोध पर भी निर्भर है। भारत के हिंदी भाषा प्रदेश में अन्य देशों की तरह व्यापार का विकास हुआ। इस प्रदेश का इतिहास सम्मत नाम हिंदुस्तान है, उसकी भाषा 'हिंदी या हिंदुस्तानी' है। हिंदी का आधार दिल्ली और उसके निकटवर्ती प्रदेशों की बोली-खड़ीबोली बनी, क्योंकि दिल्ली राजनीतिक और आर्थिक जीवन का एक प्रमुख केंद्र थी।

व्यापार और वाणिज्य किसी भी जातीय भाषा के विकास के मुख्य कारक हैं। हिंदी भाषा के विकास में उसके जातीय निर्माण की प्रक्रिया में व्यापार और विनिमय ने अधिक योगदान दिया। दिल्ली की खड़ी बोली धीरे-धीरे विकसित होते-होते जातीय भाषा के रूप में हिंदी का रूप ग्रहण कर लेती है। इसके पीछे ऐतिहासिक सांस्कृतिक कारणों से अधिक उत्तरदायी है-दिल्ली में व्यापार केंद्र का कायम होना। यों हिंदी प्रदेश में अवध और आगरा का बाज़ार भी कम मजबूत नहीं था। मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा के विकास में भी बाज़ार और व्यापार का विशेष योगदान रहा। धीरे-धीरे व्यापार और वाणिज्य के विकास का केंद्र दिल्ली बना जहां से पूरे देश में व्यापार और वाणिज्य होता था। खड़ीबोली व्यापार-विनिमय की भाषा बनी। व्यापार के रथ पर सवार खड़ीबोली का प्रसार आगरा, पटना बनारस, इलाहाबाद सभी जगह होने लगा। विकास और विस्तार की यह प्रक्रिया एकाएक घटित नहीं हुई, इसमें दीर्घ समय लगा। जातीय भाषा के रूप में हिंदी की विकास यात्रा संश्लिष्ट और दिलचस्प है। व्यापार के साथ ऐतिहासिक और सामाजिक विकास क्रम में पुनर्जागरण की संस्कृति में हिंदी एक महाजाति की भाषा बनी। यह भारत में ही नहीं घटित हुआ अपितु वैश्विक परिदृश्य पर भी भाषा के जातीय गठन की लगभग यही प्रक्रिया रही। जातीय भाषा के गठन में एक केंद्रीय भाषा बनती है। जाहिर है ऐसे में उसकी सहवर्ती बोलियों का तेज कम होता है लेकिन वह समाप्त हो जाती हैं

ऐसा नहीं है। 'हिंदी' हमारी जातीय भाषा बनी-यह इतिहास का दबाव भी था तो युगीन परिस्थितियों की मांग भी। जातीय भाषा के इस विकास क्रम में आर्थिक कारणों के साथ ऐतिहासिक-राजनीतिक और साहित्यिक कारणों की पड़ताल जरूरी है। 19वीं शताब्दी के आरंभ से ही ब्रजभाषा बनाम खड़ीबोली का रचनात्मक द्वंद्व और सहकार दिखता है। खड़ीबोली के रचनात्मक विकास की यह यात्रा पहले-पहल दिल्ली से नहीं कलकत्ता से आरंभ होती है। आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण का जन्म बंगाल में हुआ। सन् 1800 में फोर्टविलियम कालेज की स्थापना और उसमें खड़ीबोली का आरंभिक गद्य लेखन हुआ। यों कि इसके प्रिन्सिपल गिलक्राइस्ट और उस कालेज की नीतियां औपनिवेशिक मानसिकता को पोषित करती हैं। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि भाषा के विकास में खड़ीबोली ने आरंभिक डग यहीं भरे। साहित्यिक भाषा के रूप में हिंदी के विकास का रूपायन इसी कालेज से हुआ। इसके पूर्व 18वीं सदी के अंत में खड़ीबोली हिंदुस्तानी की पहली रचना 'सुखसागर' है जिसके रचनाकार मुन्शी सदासुखलाल हैं। उनके गद्य में ब्रजभाषा, अवधी और संस्कृत के शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसके बाद फोर्टविलियम कालेज में हिंदू और मुसलमान दोनों जातियों के लेखकों से उर्दू हिंदी गद्य की पुस्तकें तैयार करवायी गई। उर्दू गद्य में मीर अम्मन ने 'बागो-बहार' और हिंदी गद्य में लल्लूलाल का 'प्रेमसागर' 1803 एवं सद्‌ल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' (1803) की रचना हुई।

बंगाल की इसी भूमि से हिंदी का पहला पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' 1826 ई. प्रकाशित हुआ, जिसे हिंदी भाषा-भाषियों के सम्मान की रक्षा हेतु एवं हिंदी भाषा के विकास को ध्यान में रखकर कानपुर के रहने वाले पं. जुगुल किशोर ने संपादित किया। भाषाई पत्रकारिता का यह रूप फिर बनारस से 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन', 'बाला बोधिनी'- भारतेंदु हरिश्चंद्र, इलाहाबाद से 'हिंदी प्रदीप' पं. बालकृष्ण भट्ट, मिर्जापुर से आनंदकादंबिनी- प्रेमघन, कानपुर से 'ब्राह्मण'- प्रतापनारायण मिश्र के रास्ते दिल्ली से 'सदादर्श'- लाला श्रीनिवास दास तक पहुँचा। खड़ीबोली के जातीय निर्माण और विकास का सबसे सर्जनात्मक दौर 1857 के महासंग्राम के बाद आरंभ होता है। औपनिवेशिक संस्कृति के विरोध के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता युगीन परिवेश की मांग भी थी। खड़ी बोली उसके लिए सबसे मुफ़ीद भाषा थी। व्यापार और वाणिज्य वैसे ही इसे केंद्रीय महत्त्व की भाषा बना रहे थे। राष्ट्रीय आंदोलन की केंद्रीयता और उसकी भावना को पोषित करने में हिंदी समर्थ थी। यह दिलचस्प है कि अपने स्थानीयता और जातीयता के प्रति बेहद लगाव रखने वाली बंगाली जाति में पुनर्जागरण के चिंतको-समाज सुधारकों ने भी राष्ट्रीय आंदोलन के लिए हिंदी का समर्थन किया। यों फोर्ट विलियम कालेज और साहित्यिक पत्रकारिता से हिंदी खड़ीबोली की आधार भूमि निर्मित हो चुकी थी। राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की अखिल भारतीय संस्कृति निर्माण में हिंदी की भूमिका पहिले-पहल बंगाल में ही निर्मित हुई। सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने इस संदर्भ में सही लिखा है, कि "बंगाल से प्रारंभिक राष्ट्रीय आंदोलन की कामना अखिल भारतीय रूप धारण करने की थी। स्वदेशी आंदोलन का प्रारंभ होने से पहले बंकिमचंद्र चटर्जी, केशवचंद्र सेन, भूदेव मुखर्जी, स्वामी विवेकानंद और रवींद्रनाथ ठाकुर सरीखे बंगाल के सभी राष्ट्रीय विचारधारा के लेखक जिन्होंने स्वदेशी आंदोलन का मार्ग प्रशस्त किया, हमेशा एक और अविभाज्य भारत की बात सोचते थे। महान उपन्यासकार और विचारक बंकिमचंद्र चटर्जी (1938-1894) ने मातृभूमि की कल्पना देवी-स्वरूपिणी माता के रूप में भगवती उमा और श्री और वाक् के रूप में की और

उसके राष्ट्रगान वंदे मातरम् ने स्वतंत्रता के राष्ट्रीय आंदोलन को सर्वाधिक प्रभावकारिणीं आदर्श शक्ति प्रदान की भारत-माता की कल्पना बंगाल के इन राष्ट्रीय कार्यकरों के साथ विकसित हुई। अवनीन्द्रनाथ ने अपना प्रसिद्ध भारत-माता चित्र अगली शताब्दी के प्रारंभिक दिनों में अंकित किया और अपने देश तथा इसके इतिहास के एक प्रकार से पुनरूद्धाटन से प्राप्त नये-नये उत्साह तथा अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति के प्रति घृणा की भावना ने इस इच्छा को जन्म दिया कि देश की अपनी परंपराओं और अपनी भाषाओं का अवलंबन ब्रह्मण किया जाए। उत्तर भारत के प्रति रामायण, महाभारत तथा भागवतपुराण के बुद्ध, अशोक, विक्रमादित्य और हर्ष के, पृथ्वीराज चौहान, प्रताप सिंह और अकबर के देश के प्रति-बंगाल में सदैव से भावुकतापूर्ण आदर का भाव रहा है और उत्तर भारत की भाषाओं, ब्रजभाषा और हिंदी को बंगाल का सहज सद्भाव प्राप्त हुआ। सारे देश को कम से कम उत्तर-भारत के लोगों को एक सूत्र में बांधने वाली शक्ति के रूप में हिंदी की संभावनाओं के प्रति सबसे पहले बंगाल के राष्ट्रीय नेता जागरूक हुए और उन्होंने अपने बंगला लेखों में इस बात का समर्थन किया कि उत्तर भारत की सर्वसाधारण जनता को एकता के सूत्र में बाँधने वाली भाषा के रूप में हिंदी का उपयोग किया जाना चाहिए।"

साहित्य की सृजनात्मकता भी धीरे-धीरे ब्रजभाषा के बरक्स खड़ी बोली की ओर उन्मुख हो रही थी। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि जिस दौर में बंगाल की भूमि में पुनर्जागरण के फलस्वरूप हिंदी गद्य की पुस्तकें तैयार हो रही थीं, पत्रकारिता का विकास हो रहा था। उसी दौर में हिंदी प्रदेश में शृंगार और सौंदर्य की रीतिकालीन कविता का सृजन हो रहा था। हिंदी नवजगारण के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र की बंगाल यात्रा ने उन पर गहरा असर किया। भारतेंदु हरिचंद्र के नेतृत्त्व में हिंदी के सर्जनात्मक और वैचारिक गद्य की पुस्तके तैयार हुई और उनकी साहित्यिक पत्रकारिता में हिंदी 'नये चाल में ढली'। यह गौर करने वाली बात है कि हिंदी गद्य का आरंभ भले ही फोर्टविलियम या कलकत्ता से हुआ लेकिन उसको साहित्यिक संस्कार देने का काम भारतेंदु ने ही किया। 'हिंदी जाति' या 'हिंदी समुदाय' को समृद्ध करने वाली खुली और जनधर्मी भाषा जिसमें सहवर्ती, जनपदीप भाषाओं और अन्य स्रोतों से आने वाले शब्दों की सहज स्वीकृति थी। भारतेंदु युग के रचनाकारों ने हिंदी और उर्दू दोनों साहित्यिक रूपों का प्रयोग किया तो स्थानीय बोली बानीं को भी वहां पर्याप्त जगह मिली। भारतेंदु के समय हिंदी खड़ीबोली की जो स्थिति थी उसमें उनके पूर्व राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद और राजा लक्ष्मण सिंह की नीति का भी असर रहा। शिवप्रसाद जी का झुकाव उर्दू निष्ठ हिंदी की ओर था तो लक्ष्मण जी का संस्कृत निष्ठ हिंदी की तरफ। भारतेंदु जी उर्दू और संस्कृत से उतना ही प्रभाव ग्रहण करते हैं जो हिंदी खड़ी बोली को पोषित पल्लवित करने में सहायक हुआ। भाषाई विकास के लिहाज से भारतेंदु के भाषा की असली ताकत उनकी भाषा में बोलियों का बहुलता में प्रयोग है। हिंदी को जातीय भाषा के रूप में विकसित करने के लिए यह जरूरी भी था। उनके भाषा व्यवहार के इस पक्ष की प्रशंसा करते हुए रामविलास शर्मा ने सही लिखा है कि, "भारतेंदु के गद्य की एक विशेषता यह है कि उसमें जनपदीय शब्द का धड़ल्ले से व्यवहार होता है। उनके कलात्मक गद्य की विशेषता यह है कि उसमें ब्रजभाषा की मिठास है। हिंदी भाषी क्षेत्र में मैथिल, भोजपुरी, अवधी आदि अनेक जनपदीय बोलियां बोली जाती हैं। यहाँ की जातीय भाषा के लिए उस भाषा के लिए जो विभिन्न जनपदों की शिष्ट भाषा के रूप में विकसित हो यह आवश्यक था कि वह इन

बोलियों के नजदीक हो उन शब्दों का व्यवहार को जो इन बोलियों में सामान्य है।" भारतेंदु और उनके समकालीन रचनाकारों के भाषा चिंतन का महत्त्व इस मायने में और भी बढ़ जाता है। वह उस दौर में पैदा भाषा विवाद के समानांतर राष्ट्रीय भाषा के रूप में खड़ी बोली को मजबूत आधार मिलता गया। जब बात भाषाई राष्ट्र के निर्माण या भाषा के जातीय विकास की आती है तो जितना महत्त्व भारतेंदु का है उतना ही शिवप्रदासद सितारे अन्य लेखकों का है। शिवप्रसाद सितारे हिंद खड़ीबोली को उर्दू-फारसी से जोड़कर समृद्ध करते हैं वहीं भारतेंदु ने अपने व्यापक भाषाई चिंतन में या सृजन में 'हिंदी जाति की अवधारणा का विकास करते हैं, हिंदी नवजागरण को शक्ति प्रदान करते हैं जिसमें साम्राज्यवाद के प्रतिरोध का मुखर स्वर भी विद्यमान है। जातीय भाषा के रूप में हिंदी के विकास के लिए खड़ीबोली, उर्दू, अवधी, ब्रज, भोजपुरी, मैथिली के सहकार से हिंदी भाषा का समन्वित भाषिक रूप सृजित करने का काम भारतेंदु ने ही किया। हिंदी समुदाय के विकास के लिए यह बात आज और भी प्रासंगिक हो जाती है कि हिंदी की बोलियों की आपस में आवाजाही हो। यह चेतना भारतेंदु के चिंतन और सृजन से आरंभ होती है जिसको बाद में विकसित करने का कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, निराला, प्रेमचंद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, अज्ञेय, रघुवीर सहाय, धूमिल और केदारनाथ सिंह ने अपने साहित्य में किया।

उपनिवेशवाद, बहुभाषिकता और राष्ट्र

उपनिवेशवाद का वास्तविक उद्देश्य जनता की संपत्ति पर नियंत्रण रखना था। उन्हे इस पर भी नियंत्रण रखना था कि जनता किस चीज का उत्पादन करती है, किस तरह उत्पादन करती है और इसका वितरण किस तरह होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो वास्तविक जीवन की भाषा के समूचे साम्राज्य पर उसे नियंत्रण रखना था। उपनिवेशवाद ने भौतिक संपदा के सामाजिक उत्पादन पर सैनिक विजय के जरिए अपना नियंत्रण रखा और राजनीतिक अधिकनायकवाद द्वारा उसे पुष्ट किया लेकिन प्रभुत्त्व का इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र उपनिवेश की जनता का मानसिक जगत था, जिस पर उसने संस्कृति के जरिए नियंत्रण स्थापित किया। बिना मानसिक नियंत्रण के आर्थिक और राजनीतिक नियंत्रण न तो कभी पूरा हो सकता है और न कारगर। जनता की संस्कृति पर नियंत्रण का मतलब दूसरों के संदर्भ में खुद को परिभाषित करने के उपकरणों पर नियंत्रण करना है।

उपनिवेशवादियों की इस प्रक्रिया में दो पहलू निहित थे जन संस्कृति का विध्वंस अर्थात् जनता की कला, नृत्य, धर्म, इतिहास, भूगोल शिक्षा भौतिक साहित्य और लिखित साहित्य का विध्वंस अथवा जान-बूझकर जन संस्कृति के महत्त्व को कम करके आकना। दूसरा पहलू था उपनिवेशवादियों की भाषा को सचेत ढंग से काफी विकसित भाषा के रूप में प्रस्तुत करना। गुलाम देशों की जनता की भाषा पर उपनिवेशवादी देशों की भाषा का प्रभुत्त्व हो।

किसी भी राष्ट्र में उपनिवेशवाद जनता की संपत्ति पर नियंत्रण रखने के साथ उनके कला, धर्म, साहित्य और भाषा पर नियंत्रण कर अपना प्रभुत्त्व कायम करता है। जनता के मानसिक जगत पर प्रभुत्त्व स्थापित करने का सबसे कारगर हथियार उस देश की भाषा पर अपना अधिकार जमाना। भारत में 17वीं

शताब्दी में अंग्रेज आये और भारत पर अपना प्रभुत्त्व जमाने के लिए उन्होंने भाषा और शिक्षा को मुख्य आधार बनाया। सबसे पहले साजिशन संस्कृति, साहित्य और इतिहास के पुनरूद्धार के बहाने उसकी मनमानी व्याख्या करना, फिर औपनिवेशिक संस्कृति का ऐसा पाठ परोसना कि सब उसके आदती हो जाये, अभ्यस्त हो जाएं। औपनिवेशिक संस्कृति उन्हे उदार और अपने अनुकुल लगने लगे। कहना न होगा कि भारत में उपनिवेशवादी संस्कृति ने यही किया। यहाँ तक कि नवजागरण दौर के बहुत से अगुआ तक इस औपनिवेशिक संस्कृति के शिकार हुए। उन्हे यूरोपीय भाषा जागरण और क्रांति की भाषा लगने लगी। यह खेल अंग्रेजी राज में तो चलता ही रहा। स्वतंत्रता के बाद यह और भी गतिशील तरीके से फला-फूला।

सन् 1835 में मैकाले की शिक्षा नीतियों ने बड़ी चालाकी से भारत की पारंपरिक भाषाओं और संस्कृति को नये ज्ञान विज्ञान के लिए असमर्थ बताकर हमें हमारी समृद्ध परंपरा से काट दिया गया। भाषा का यह औपनिवेशिक पाठ हमारे राष्ट्र के लिए बहुत घातक साबित हुआ। स्वाधीनता संग्राम के दौर में अंग्रेजी राज की इन नीतियों का पुरजोर विरोध भी हुआ। स्थानीय बोली बानी में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रतिरोध में अनगिनत लोकगीतों और लोकगाथाओं का सृजन हुआ। इस दौर में भी प्रभावशाली बौद्धिकों और रईसो की एक ऐसी जमात थी जो अंग्रेजी राज का विरोध करते हुए भी मैकाले की भाषाई और शैक्षिक नीतियों का पोषण कर रही थी। आज़ादी के बाद अंग्रेजों से मुक्ति मिली अंग्रेजी नीतियों से नहीं। अंग्रेजों द्वारा बोया गया संकीर्ण भाषाई विवाद, भाषाई साम्राज्यवाद की नीतियां आजाद भारत में अधिक विकृत रूप में फली-फूली। एक चेहरा इसका अंग्रेजी वर्चस्व में दिखायी देता है तो दूसरा भारतीय भाषाओं की आपसी खींचातानी में। गाँधी जी अपनी पुस्तक 'हिंद स्वराज्य' में भाषा के संकीर्णतावादी दृष्टि का विरोध करते हुए अंग्रेजी के समानांतर भारत की स्थानीय भाषाओं की ओर उन्मुख होने की बात करते हैं। आज़ाद भारत में भाषाई जनतंत्र को शक्तिशाली बनाने के लिए पूंजीवाद और भाषाई साम्राज्यवाद के खतरों को लक्षित कर लोहिया जी ने कई आंदोलन चलाया।

विकास की नयी पूंजीवादी अवधारणा और आधुनिकता के नये विमर्शों में भाषाई संकीर्णता के इस विवाद को तीव्रतर कर उसे खतरनाक मोड़ पर ला खड़ा किया। इसके कई रंग हमारे सामने मौजूद हैं। हिंदी उर्दू का बैरभाव इसी का एक नमूना है। हम सब जानते हैं कि हिंदी भाषा हिंदी जाति की परंपरा, हिंदी-उर्दू की साझी विरासत की देन है जिसको अलग करने का काम अंग्रेजों ने किया। बिना इस अलगाव के अंग्रेजी राज और अंग्रेजी का वर्चस्व कायम करना मुमकिन न था। अंग्रेज अपने इस मनसूबे में पूरी तरह से सफल रहे और हम असफल। कुछ वर्षों से लोक संस्कृति और लोक भाषा विकास के नाम पर पूंजीपोषित कारनामे भी खूब हो रहे हैं। कुछ संगठन और संस्थाएं एवं व्यक्ति कुछ विशेष भाषाओं को केंद्रित कर ऐसा-प्रचार-प्रसार कर रहे हैं मानो लोक संस्कृति की परंपरा की वाहक वही भाषा है शेष भाषाएं लोक संस्कृति हीन हैं। भाषा के विकास का मसला पूंजी और सत्ता के वर्चस्व से जुड़ा होता है। सत्ता और शासन पर जिस विशेष वर्ग के लोग काबिज होते हैं उसका विकास अधिक होता है। यह भाषा विमर्श के लोकतांत्रिक मूल्य और भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र के लिए खतरा ही है। कहना न होगा कि इन दिनों भोजपुरी भाषा, साहित्य और संस्कृति को लेकर जो सजगता और सजीदगी दिखायी दे रही है उसकी तुलना में अवधी, बघेली, बुंदेली, ब्रज, छत्तीसगढ़ी और राजस्थानी

जैसी लोकभाषाएं उपेक्षित हैं। ऐसा कहकर मैं हिंदी के विकास में भोजपुरी को कमतर नहीं आंक रहा हूँ बल्कि स्थानीय उपनिवेशन की उन नीतियों का विरोध कर रहा हूँ जो हिंदी की बहुभाषिक लोकसंस्कृति की उपेक्षा करती हैं। भारतीय राष्ट्र की कल्पना भारत की बहुभाषिक संस्कृति में निहित है। बहुभाषिकता और बहुसांस्कृतिक परंपरा के साथ यह राष्ट्र सोता और जागता है। हिंदी राष्ट्रभाषा और राष्ट्र का गौरव है लेकिन इसके साथ ही भारत की बहुत सी भाषाएं है जिनका सम्मान और पहचान करना भारतीय राष्ट्र को मजबूत करेगा। भारतीय भाषाओं के प्रति हम हिंदी वालों की दृष्टि कम संकीर्ण नही है। दक्षिणवाले हिंदी को सीखें जाने और प्रेम करें, क्योंकि हिंदी हमारे राष्ट्रीय गौरव की भाषा है जबकि हमारे लिए दक्षिण की भाषा सीखना आवश्यक नहीं है। भारत की इन भाषाओं के प्रति हिंदी प्रदेश के लोगों का आलम यह है कि हिंदी भाषी पाठक को शायद ही यह पता हो कि तमिल, तेलुगु और मलयालम में कौन से साहित्यकार हैं और वहां की सृजन-संस्कृति कैसी है? इस मामले में दक्षिण वाले हमसे थोड़ा उदार हैं। संकीर्णतावादी इस भाषाई सोच को समय-समय पर हमारे राजनेता अपने शुद्धतावादी अपने वक्तव्यों से खाद-पानी देने का काम करते रहते हैं। भारतीय भाषाओं के विकास में ही हिंदी का विकास जुड़ा हुआ है। भारतीय भाषाओं की आपसी आवा-जाही और हिंदी व उसकी बोलियों के साझे विकास से राष्ट्र का विकास भी होगा और हिंदी का भी। भारत में बोली जाने वाली इस हिंदी को बाजारू हिंदी कहने में संकोच नहीं होना चाहिए। यह हिंदी जिसमें आम जन अपना सौदा-सुलुफ करता है, गीत-गवनई गाता है, हंसी-मजाक करता है। व्याकरण इसके पीछे है यह व्याकरण के आगे। समय के साथ इसमें बदलाव भी होता रहता है। यह भारत की सामाजिक संस्कृति की भाषा है। इसमें न जाति भेद है न मन भेद। इस संदर्भ में सुनीति जी का यह कथन उल्लेखनीय है- “लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया में हिंदुस्थानी व्याकरण के मोटे नियम एक पृष्ठ में ही आ गए हैं जबकि अवधी, बंगला, मराठी, तमिल, तेलुगु, आदि भाषाओं के लिए दो-दो पूरे भरे हुए पृष्ठ लगे हैं। पूर्वी पंजाबी में तीन पृष्ठ लगे हैं और मैथिली में चार। और यह तो उस स्टैंडर्ड साहित्यिक हिंदुस्तानी की बात है जिसमें नागरी हिंदी तथा उर्दू दोनों रूपों की व्याकरण शुद्ध साधु-भाषा सम्मिलित है जिसे या तो पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा दक्षिणी पूर्व पंजाब के निवासी ही बोलते हैं, या ऐसे लोग बोलते हैं जिन्होंने स्कूल में शुद्ध नागरी हिंदी अथवा उर्दू पढ़ी हो। पछाँह के लोगों को छोड़कर हिंदी संसार की साधारण जनता द्वारा तथा हिंदी क्षेत्र के आस पास के प्रदेशों में साधारण जन द्वारा, जिसने हिंदुस्थानी पढ़ी नहीं, बोली जाने वाली अत्यंत प्राणयुक्त सार्वजनीन हिंदुस्थानी का व्याकरण तो और भी संक्षिप्त है। यह हिंदी या हिंदुस्तानी बिना लेश मात्र भी मान हानि के बाजारू हिंदुस्तानी या बाजारू हिंदी कही जा सकती है।” बाज़ार से निकली ‘हिंदी’ इसी रूप में जन भाषा का दर्जा पाती है। जन-मन की भाषा बनती है। आधुनिक विचार और विमर्श के साथ उसका रूप रंग भी बदलता रहा।

भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और उत्तर समय में हिंदी

अगला दौर नवउदारता के बाद की हिंदी का है जो पिछले पंद्रह-बीस बरसों से रहा है। इस दौर में दैनिक-साप्ताहिक अखबारों की संख्या में भारी इज़ाफा हुआ है। जिन अंग्रेजी शब्दों के लिए हिंदी शब्द सुलभ हैं, उनका भी प्रयोग किया जा रहा है। भूमंडलीकरण का सबसे गहरा प्रभाव मिलावट का चलन है। यह मिलावट खान-पान से लेकर भाषा तक में है। कहानी, कविताओं की भाषा में भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हो

रहा है। एक ज़माने में लोग भाषा के प्रति सतर्क थे। अब अंकुश हट गया है। सब लोग स्वतंत्र हैं चाहे जैसी हिंदी लिखें।

सन् 80 के बाद भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण और बाज़ारवाद का विकास वैश्विक परिदृश्य पर हुआ। भारत इसका केंद्र रहा। जाहिर है यहाँ इनके फायदे और नुकसान भी अधिक हैं। भूमंडलीकरण का संचालन अमेरिका कर रहा है। नव-साम्राज्यवाद की विचार-संस्कृति का वाहक अमेरिका ही है, जो भूमंडलीकरण और बाज़ारवाद के सहारे संपूर्ण विश्व का अमेरिकीकरण कर रहा है। भूमंडलीकरण और नव-साम्राज्यवादी नीतियों का सबसे अधिक खतरा जन-भाषाओं या लोक भाषाओं पर है। भारत की अधिकांश भाषिक संस्कृति मौखिक और जनधर्मी है। नव साम्राज्यवादी ताकतें, बाज़ारवाद और भूमंडलीकरण के नाम पर भारत की लोकधर्मी संस्कृति और भाषा को नष्ट करने के हथकंडे अपना रही हैं। मैनेजर पांडेय भूमंडलीकरण के इसी ख़तरे की ओर संकेत करते हुए कहते भी हैं, “भूमंडलीकरण की जो आंधी चल रही है उसमें भाषाओं के मरने का क्रम भी वहीं होगा जो उनके विकास का है। पहले वो भाषाएं मरेंगी जो बोलचाल की हैं फिर वो भाषाएं मरेंगी जिनकी केवल लिपि है और अंत में उनकी मृत्यु होगी जिनकी लिपि भी है और जो बोली भी जाती है और जिनकी प्रिंटिंग भी होती है।”

असल में बाज़ारवाद के लिए सबसे बड़ा खतरा बहुभाषिकता है जिसमें उसको फूलने-फूलने का मौका नहीं मिलता। बाज़ार की आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए साम्राज्यवादी शक्तियां भाषाई और सांस्कृतिक विविधता को नष्ट करने की साजिश रच रही हैं। इस प्रक्रिया में बाज़ार और व्यापार की एक भाषा के विस्तार की क़वायद की जा रही है। भूमंडलीकरण के इस दौर अंग्रेजी को विश्व भाषा बनाने की कोशिश की जा रही है। किसी भी समाज की जातीय चेतना उसकी अपनी भाषा और संस्कृति में व्यक्त होती है। भारत भाषाई और सांस्कृतिक बहुलता वाला देश है। भाषा को संस्कृति का प्रतिरूप भी माना जाता है। किसी भी भाषा का मरना उस संस्कृति का मरना है। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व में लगभग 7000 भाषाएं हैं जिनमें आधी भाषाओं की स्थिति चिंताजनक है। रिपोर्ट के अनुसार लगभग 2500 भाषाओं का अस्तित्व खतरे में है। दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में यह स्थिति अधिक चिंताजनक है। यहाँ लगभग 200 भाषाएं लुप्त होने के कगार पर हैं। दुनिया भर में लगभग 200 ऐसी भाषाएं है जिनके बोलने वालों की संख्या दर्जन भर से कम है। दरअसल नवसाम्राज्यवादी नीतियां, उदारीकरण, भूमंडलीकरण और आर्थिक विकास की नई नीतियों के नाम पर विविधताओं को खत्म कर एक संस्कृति और एक भाषा का प्रचार कर रही है। यह संस्कृति है अमेरिकी और भाषा है अंग्रेजी। कहना न होगा कि यह संकट आदिवासी और हाशिए का जीवन जीने वालो की भाषा पर अधिक है। शासन सत्ता और सरकार से गठजोड़ कर ये नवऔपनिवेशिक ताकतें आदिवासी समाज की सामूहिक चेतना, प्राकृतिक शक्ति, भाषा और संस्कृति को नष्ट करने पर तुली हैं। अमेरिका पोषित इस बाज़ारवादी संस्कृति द्वारा आदिवासी जन-जीवन और भाषा संस्कृति को नष्ट ही नहीं किया जा रहा है उन्हें अपने मूल से विस्थापित होने को मजबूर किया जा रहा है। आदिवासी बहुल राज्य की सरकारें इस विनाश को रोकने के बजाय पूंजीवादी ताकतों के साथ गठजोड़ कर आदिवासी समाज और संस्कृति को नष्ट कर रही हैं। आदिवासी समाज अपनी मातृभाषा और सृजन के द्वारा इस वर्चस्वशाली शक्तियों से प्रतिरोध कर रहा है।

मुंडारी, संथाली खडिया, कुडुख, गोंडी, सेमा और माउ आदिवासी भाषाओं में प्रचुर रचनात्मक लेखन हो रहा है। अपनी मातृभाषा में यह विमर्श वर्चस्वशाली संस्कृति के विरूद्ध प्रतिरोध की जन संस्कृति का रचनात्मक स्वर है। इसी बात को लक्षित कर आदिवासी विमर्शकार बिसेश्वर प्रसाद केशरी ने लिखा भी है, “भाषा और समाज की सहज प्रगतिगामी प्रकृति का सबसे बड़ा अवरोधक है उपनिवेशवाद, चाहे वह किसी कोटि का क्यों न हो और इस सर्वनाशी उपनिवेशवाद का एक मात्र विकल्प है स्वायतत्ता। मातृभाषा का सवाल जातीय अस्मिता की रक्षा और विकास से सीधे जुड़ा है। दूसरे शब्दों में मातृ भाषा उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष का एक कारगर हथियार है। इसके माध्यम से मुक्तिकामी जनता अपने विकास के उत्तरोत्तर मंजिलों को तय करती है।”

भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और आधुनिकता के उत्तर समय में भाषा का विस्तार हुआ है या विकास? 1980 से 2015 के बीच हिंदी भाषा के विस्तार और विकास की बात की जाय तो इस दौर में हिंदी भाषा ने अपना चोला पूरी तरह से बदल लिया है। हिंदी के विस्तृत कथा लेखन में संस्कृत निष्ठ हिंदी से मुक्त भाषा है। आज हिंदी नहीं हिंदियों का दौर है। साहित्य की हिंदी, सिनेमा की हिंदी, टी.वी. की हिंदी, अखबार की हिंदी, एफ.एम. की हिंदी, समाज-विज्ञान की हिंदी, राजनीति की हिंदी। विविधता में शायद इससे पहले का दौर हिंदी के लिए इतना नहीं था लेकिन हिंदी का यह स्वरूप हमारी हिंदी के जातीय स्वरूप और उसकी अस्मिता को समृद्ध कर रहा है या नष्ट कर रहा है। यह विचारणीय प्रश्न है।

भूमंडलीकरण के दौर में निजीकरण की प्रक्रिया बढ़ी। निजीकरण में कार्पोरेट पूँजी ने अंग्रेजी को प्रभावशाली बनाया। अंग्रेजी के वर्चस्व को बढ़ाने के लिए औपनिवेशिक दौर में हिंदी-उर्दू का झगड़ा पैदा किया गया तो उत्तर-औपनिवेशिक दौर में अंग्रेजीपरस्त हिंदी का वर्चस्व बढ़ा। अंग्रेजी-संस्कृति को पोषित करने वाले वर्ग ने ‘हिंदी’ को जटिल भाषा बताकर आमजन से उसे दूर किया। ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं में हिंदी में प्रकाशित होने वाली किताबों की संख्या घटी। पब्लिक स्कूलों की भरमार ने भी, अंग्रेजी के वर्चस्व को बढ़ाने में मदद की। वैश्विक बाज़ार और पूँजी के इस खेल ने रणनीतिक ढंग से हिंदी की भाषिक संस्कृति को कमजोर करने की कोशिश की। कभी हिंदी को उर्दू से लड़ाया तो कभी उसको संस्कृतमय बनाकर। फिल्मकार बलराज साहनी ने जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय के पहले दीक्षांत भाषण में हिंदी की हीन दशा और अंग्रेजी के वर्चस्व की सही पड़ताल करते हुए कहते हैं, “पूंजीपति हर चीज को मुनाफे के दृष्टिकोण से देखता है। उस दृष्टिकोण से उसके लिए आज भी अंग्रेजी फायदेमंद है। भारत के पूंजीपति वर्ग के लिए अंग्रेजी भारत के आम मेहनतकश लोगों के लिए एक मुश्किल और अपहुँच भाषा थी। इसीलिए शासक वर्ग ने उन्हें राजभाषा का दर्जा दिया था जिनके द्वारा वह जनसाधारण में असभ्य और अशिक्षित होने तथा हीनता और आत्मग्लानि की भावनाएं पैदा करता था ताकि वे अपने हाथों अपनी गुलामी की जंजीरें मजबूत करते रहें और आपस में लड़लड़ कर मरते रहें। आज यही भूमिका अंग्रेजी अदा कर रही है। भारत का पूंजीपति वर्ग, देश में इंकलाब नहीं चाहता। अंग्रेजों से विरसे में मिली हुई व्यवस्था को उसी प्रकार कायम रखने में उसका फायदा है। पर वह खुलेआम अंग्रेजी को अंगीकार नहीं कर सकता। राष्ट्रीयता का कोई न कोई आडंबर खड़ा करना उसके लिए जरूरी है। इसीलिए वह संस्कृतवादी हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने का

ढोंग करता है। उसे पता है कि संस्कृत के शब्दों के बोझ तले दबी नकली और बेजान भाषा, अंग्रेजी के मुकाबले में खड़े होने का सामर्थ्य अपने अंदर कभी पैदा नहीं कर सकेगी। आज के युग के वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दों से रिक्त होने के कारण वह हमेशा कमजोर बनी रहेगी।"

भाषा का राजनीति से गहरा सरोकार होता है। भूमंडलीकरण के दौर में आर्थिक उदारीकरण, वैश्वीकरण के विस्तार ने भाषा की राजनीति को प्रभावित किया है। भारतीय लोकतंत्र में विपक्ष में रहते हुए राजनीतिक पार्टियां भारतीय भाषाओं और हिंदी के विकास के लिए भारतीयता के परिवेश के साथ तार्किक बातें करती हैं लेकिन सत्ता पक्ष में आते ही उनका सुर बदल जाता है। वह वैश्विक पूंजीवाद और कारपोरेट संस्कृति के अनुरूप संचालित होने लगती है। वह प्रायः भाषा संबंधी नव-साम्राज्यवादी नीतियों के समक्ष घुटने टेकती नजर आती हैं। अंग्रेजी के बरक्स हिंदी और भारतीय भाषाओं से उसके संबंध पर प्रायः सरकारें उदासीन नजर आती हैं। सत्ताधारी सरकारें आंकड़ों और सरकारी रपटों के आधार पर हिंदी के बढ़ते भाषाई दायरे की बात करती हैं। यों इस शाब्दिक और आंकिक विस्तार में हिंदी का कितना विकास हुआ यह बहसतलब प्रश्न है? नई पीढ़ी के सामने विज्ञापन और बाज़ार के बीच फैले चकाचौंध में भाषा के सृजनात्मक विमर्श का कोई ढाँचा नहीं नजर आता। उत्तर-आधुनिकता और उत्तर औपनिवेशिक विमर्श ने खंडित केंद्रीयता इतिहास के अंत और परंपरा के नकार की वैचारिकी का ऐसा मॉडल पेश किया है कि हम भाषा के विमर्श का कोई सार्थक रूप खड़ा नहीं कर पा रहे हैं। मीडियाकर्मी अनिल चमड़िया भाषा विमर्श के इसी संकट की ओर संकेत करते हुए सही लिखते हैं कि "हिंदी का सत्ताधारी वर्ग भाषा के विस्तार की तस्वीर पेश करके अपनी सार्थकता बनाए रखने की हर मुमकिन कोशिश करता है। वह भाषा के विस्तार के लिए हमें बाज़ार में खड़ा कर देता है। प्रयोगशाला की तरफ नहीं ले जाता है। नई पीढ़ी के सामने जब कोई विमर्श खड़ा होता है तो उसके साथ विमर्श की एक विरासत होती है। भूमंडलीकरण के जमाने में जिस पीढ़ी ने आंखें खोली उसके सामने यह बोलता और दिखता हुआ वह टी.वी. सेट था कि इतिहास का अंत हो गया है। नई पीढ़ी के लिए भाषा का प्रश्न राजनीतिक प्रश्न के तौर पर खड़ा होने में यह मददगार होता है। विमर्श को विरासत से विस्थापित कर दिया गया है। जबकि किसी भी समाज निर्माण के आधार और विकास के लिए यह जरूरी है।"

यों भाषा विमर्शकारों ने हिंदी का एक नया चित्र भी हमारे सामने उपस्थित किया है। बेहद सर्जनात्मक और विकास की गतिकी से भरा हुआ। हिंदी के नये उभरते चित्र में हाशिए के समाज की भूमिका को विशेष महत्त्व दिया गया है। राजनीति और साहित्य विमर्श में स्त्री, दलित, आदिवासी समाज की भूमिका ने हिंदी भाषा के भूगोल को ही नहीं उसके लोक को भी विकसित किया है। लोकसभा, राज्यसभा और विधानसभाओं में किस्म-किस्म की हिंदी का प्रयोग सुनने को मिल रहा है। राजनीतिक सत्ता के उलटने से सांस्कृतिक सत्ता पर भी प्रभाव पड़ा है। स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्श में हो रही रचनाओं और वैचारिक लेखन ने हिंदी भाषा के पारंपरिक काव्यशास्त्र को चुनौती देते हुए भाषा का नया लोकधर्मी सौंदर्यशास्त्र रचा है। अनुवाद ने हिंदी और भारतीय भाषाओं के आपसी संबंध को विकसित किया है। हिंदी के इलेक्ट्रानिक मीडिया के विस्तार के साथ प्रिंट मीडिया का भी विस्तार हुआ है। टी.वी. में न्यूज चैनल बढ़ने के साथ

अखबारों और पत्रिकाओं में भी उतनी ही बढ़ोत्तरी हुई है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि हिंदी की एक नयी भाषा बन रही है जिसमें ग्लोबल के साथ-साथ हिंदी का लोकल भी बढ़ा है। इस प्रक्रिया में लिखित (मुद्रित), श्रव्य (एफ.एम. रेडियो) और दृश्य-श्रव्य (टी.वी. एवं सिनेमा) का एक साथ प्रसार हो रहा है। यों यह बात और है कि इसमें हिंदी का बनता हुआ रूप हिंदी को कितना सर्जनात्मक बनाता है? उत्तर-आधुनिक विमर्शकार सुधीश पचौरी हिंदी के इस नये बनते रूप को प्रशंसित करते हैं और इस नयी हिंदी को 'हिंग्रेजी या वर्णसंकर' कहते हैं जो मुक्त बाज़ार में निर्मित हो रही है, "सदियों बाद इस उपमहाद्वीप को एक ऐसी भाषा नसीब हुई जिसमें श्रीलंका से लेकर खाड़ी देशों तक संचार संभव हुआ है। इसे रूबी भाटिया, जावेद जाफरी, साजिद ने बनाया है। इसे चैट शो वालों ने बनाया है, इसे आमंत्रित जनता ने बनाया है। इसे देखकर शुद्धतावादी वैयाकरण रोते हैं तो क्या करें। यह श्रव्य और वाच्य भाषा है। इससे जीवन चलता है।...यह मुक्त बाज़ार में निर्मित मध्यवर्ग की, बाज़ार द्वारा बाज़ार के लिए बनी भाषा है और सरेआम बनती भाषा है।...अनेक चैनलों के भावी परिदृश्य में हम एक ऐसी भाषा पायेंगे जो और भी वर्णसंकर और भी खिचड़ी होगी।...बाज़ार की शक्तियों और उनके सहयोगी माध्यम टी.वी. ने यह मसला सुलझा दिया है कि कौन सी भाषा जन-संचार में सक्षम है। जो सक्षम है वह बड़ी भाषा है। यह हिंदी है जिसे वर्ण-संकर, भ्रष्ट और हिंग्रेजी कह सकते हैं।"

सुधीश पचौरी के इस मंतव्य से पूरी तरह सहमत तो नहीं हुआ जा सकता है लेकिन इसको नकार कर भी हम हिंदी का वर्तमान भाषा-विमर्श नहीं कर सकते। हिंदी का बाज़ारीकरण हो रहा है और इस प्रक्रिया से हिंदी ने अपना चोला बदल लिया है। पर इससे यह कहना कि यही हिंदी की असली छवि है, गलत होगा। यह हिंदी की कई छवियों में से एक है। हिंदी का विकास आधुनिक पुनर्जागरण के साथ हुआ। उसके साथ ही भाषा, साहित्य और ज्ञान-विज्ञान की प्रशाखाओं से हिंदी जुड़ती हुई अपना रूप ग्रहण करती है। समय के प्रवाह के साथ हिंदी का चाल ढाल बदला और आज वह पुराने के साथ नये विमर्श की, नये बाज़ार की और आधुनिकता के नयी वैचारिकी की भाषा है। हिंदी की छवि और उसमें निहित विचार एवं सृजन की पहचान करते हुए प्रख्यात समाजविज्ञानी और चिंतक अभय कुमार दुबे की यह मान्यता काबिले गौर है कि, "हिंदी संस्कृत की बेटी, या उर्दू की दुश्मन या अंग्रेजी की चेरी नहीं है। अगर वह किसी की बेटी है तो भारतीय आधुनिकता की बेटी है। हिंदी की आलोचना करने के लिए आधुनिकता के उस कारखाने की आलोचना करनी होगी जिसकी कारीगरी का नमूना यह अनूठी भाषा है। चूंकि इसका सीधा संबंध आधुनिकता से है इसलिए यह आधुनिक विचारों के साथ छूट लेती है। यह प्रक्रिया समाज को फायदा भी पहुंचाती है, और फायदा पहुंचाने की संभावनाएं कभी-कभी संदिग्ध भी लगती हैं। कुल मिलाकर सभी आधुनिक विचार हिंदी के दायरे में दोनों सिरे से खुले रहते हैं।"

कहना न होगा कि हिंदी जो बंगाल की जमीन से डग भरते हुए काशी में आधुनिकता और पुनर्जागरण के जनक भारतेंदु हरिश्चंद्र के यहाँ 'नई चाल में ढली'। यहीं पर उन्होंने हिंदी को जातीय संगीत और लोकसंस्कृति से परिनिष्ठित किया। छायावादी कविता में हिंदी सर्जना को नयी छवि मिली वह संजी-संवरी। कुछ वायवीय भी हुई। प्रगतिशील कविता की धारा में त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन ने उसको

लोक के जन-मन की भाषा बना दिया। मुक्तिबोध और शमशेर ने उसमें गहन विचार बोध भरा। रघुवीर सहाय ने पत्रकारिता की हिंदी और साहित्य की हिंदी को एक नया मुहावरा दिया। केदारनाथ सिंह, राजेश जोशी और अरुण कमल हिंदी के नये मुहावरों और जंबादानी से उसको समृद्ध कर रहे हैं। कथा सम्राट और हिंदुस्तानी भाषा के लेखक प्रेमचंद ने हिंदी भाषा को आम भारतीय जन की भाषा बनाया।

सृजन की इस जमीन पर आलोचना और विचार का दूसरा सोता भी भारतेंदु के यहां से ही फूटता है। द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के द्वारा हिंदी को व्याकरणिक संस्कार देते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' और चिंतामणि निबंध संग्रहों में हिंदी की सामासिकता और प्रांजलता को बढ़ाया। हिंदी भाषा को नयी जमीन मिलती है रामविलास शर्मा के 'हिंदी जाति' की अवधारणा में। रामविलास शर्मा के भाषिक चिंतन का आधार धीरेंद्र वर्मा की पुस्तक 'हिंदी राष्ट्र या सूबा हिंदुस्तान' और किशोरी दास वाजपेयी की 'हिंदी शब्दानुशासन' है। यहां से हिंदी भाषा और उसकी जातीय अवधारणा को विवेचित करते हुए 'भाषा और समाज' पुस्तक में रामविलास शर्मा ने हिंदी को संस्कृत की बेटी या अनुगामी न मानकर उसकी पूर्वज भाषाओं में प्राकृत और हिंदी क्षेत्र की लोकभाषाओं की मौखिक परंपरा में तलाशने की कवायद की है।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ हिंदी भाषा का विस्तार और विकास होता है। सन् 80 के बाद नये विमर्श और वैचारिकी के साथ हिंदी का विविध रंगी और बहुवर्णी रूप हमारे सामने मौजूद है। हिंदी में बाज़ारवाद, वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, उत्तर-औपनिवेशीकरण और उत्तर-आधुनिक विचारधारा ने उसके रंग-रूप को बदला है तो हाशिए के विमर्श ने हिंदी का नया सौंदर्यशास्त्र रचा है। यों हिंदी पत्रकारिता में रघुवीर सहाय की 'दिनमानी हिंदी', राजेंद्र माथुर की 'नवभारत टाइम्स' की चुटीली हिंदी और प्रभाष जोशी के संपादन में 'जनसत्ता' में गढ़ी गई हिंदी वर्तमान पत्रकारिता में खोजे न मिलेगी। न मिले कोई बात नहीं। हमारे समय में हिंदी बाज़ार, साहित्य, मीडिया, पत्रकारिता, फिल्म और विविध भारती (एफ.एम.) और टी.वी. के असंख्य चैनल में प्रवाहित हो रही है। यों यह हमें चुनना, सुनना है कि हम विविध भारती की समृद्ध-सजीली हिंदी सुनना चाहते हैं या रेडियो मंत्रा की मंत्रमुग्ध करने वाली हिंदी। हिंदी भारतीय राष्ट्र, आधुनिकता और लोकतंत्र का प्रतिनिधित्त्व करने वाली भाषा है। लोकतंत्र और आधुनिकता की बहुरंगी प्रवृत्तियां उसमें व्याप्त हैं। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, मीडिया, साहित्य, संस्कृति, राजनीति और बाज़ार में इस भाषा के सिरों और सतरों की तलाश की जा सकती है।

ISSN : 2395-7468

भोजपुरी का जीवट संघर्ष: बोली से भाषा की ओर

धीरेंद्र कुमार राय[1]

हिंदी पट्टी की कई प्रचलित बोलियों में एक भोजपुरी है। यह न केवल दैनिक कार्य व्यापार में अपने क्षेत्र में समर्थ है, बल्कि प्रवासी भारतीयों के बीच भी इसकी पहुंच है। उनसे संवाद की एक मजबूत कड़ी के रूप में स्थापित है। भोजपुरी शुरू से ही जरिगर और जोरगर संस्कृति रही है। सरल , सहज, सरस और जीवंतता इसकी विशेषता है, जिसके कारण यह रग-रग में प्रवाहित होने वाली संजीवनी बनी रहती है। यही वजह है कि सात समंदर पार जाने के बाद भी भोजपुरी भाषी अपनी बोली और संस्कृति को गर्व से जी रहे हैं। जिस प्रकार इसके बोलने वालों में शौर्य, उत्साह एवं पराक्रम के गुण पाये जाते हैं उसी प्रकार इस भाषा में भी जीवटता है। पूर्व लोकसभा अध्यक्ष मीरा कुमार के शब्दों में कहें तो "भोजपुरी केवल भाषा नहीं, दर्शन भी है। इसमें 'मैं' नहीं बल्कि 'हम' होता है। यह सामूहिकता का बोध कराता है जो एक परिष्कृत जीवन शैली का सबसे बड़ा उदाहरण है।"

पिछले कुछ सालों से विभिन्न संगठनों, संस्थाओं और राजनीतिज्ञों ने भोजपुरी को आठवीं अनुसूची में शामिल करने की बात कही है। इस बाबत व्यापक स्तर पर मुहिम तब और तेज हो गई जब मैथिली, बोडो, संथाली और डोगरी को आठवीं अनुसूची में शामिल कर लिया गया। हालांकि 2006 में प्रस्ताव लाया भी गया था। तत्कालीन गृह राज्य मंत्री श्रीप्रकाश जायसवाल ने कहा था कि अगले ही सत्र में इस पर विधेयक लाया जाएगा। तब 2007 में सिविल सेवा परीक्षा में भाषाओं का निर्धारण हो जाने तक के लिए इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। जब मार्च, 2012 में संघ लोकसेवा आयोग की रिपोर्ट आई तो इस मुहिम का ज़ोर पकड़ना स्वाभाविक था। लोकसभा में उत्तरप्रदेश, बिहार और कुछ अन्य सांसदों का भोजपुरी को लेकर आक्रामक तेवर देख कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी के निर्देश देते ही गृहमंत्री पी चिदंबरम ने कहा कि सरकार सीताकांत महापात्रा और संघ लोकसेवा आयोग की उच्च स्तरीय समिति की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद अपना निर्णय मानसून सत्र में बताएगी। इतना ही नहीं, कभी हिंदी न बोलने वाले चिदंबरम ने भोजपुरी में दो शब्द बोलकर काफी वाहवाही लूटी। तब तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष मीरा कुमार के अनुसार अगला मानसून सत्र भोजपुरियों के लिए खुशखबरी लाने वाला था। हालांकि तब से अब तक कई मानसून और सत्र दोनों बीते। सरकार भी बदली। लेकिन भोजपुरिया स्वाभिमान की लड़ाई अब भी जारी है। दरअसल वर्तमान प्रधानमंत्री ने भी पटना, बिहार में अपनी चुनावी रैली का आगाज़ भोजपुरी उद्बोधन से करते हुए इसके उचित सम्मान की बात कही थी। इस कड़ी में वर्तमान सरकार में पहली पंक्ति के कई और नेता-मंत्री भी शामिल है। अब देखना यह है कि राजनीतिक आँख-मिचौली का खेल ऐसे ही चलता रहेगा या कोई ठोस संवैधानिक कदम उठाए जाएंगे।

[1] सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
ईमेल: dhirugazipuri@gmail.com

किसी भी बोली को भाषा बनाने से पहले उसके सभी पक्षों पर विचार कर लेना उचित होता है। इसके आंतरिक और वाह्य दो मुख्य पक्ष होते हैं। पहले के अंतर्गत सवाल यह उठता है कि क्या भोजपुरी शासन-प्रशासन के कार्यों को करने में सक्षम है? भोजपुरी की अपनी कोई लिपि, कोश-ग्रंथ या कोई मानकीकृत व्याकरण है? उसकी साहित्य परंपरा कितनी समृद्ध है? दूसरे पक्ष में हमें इस बात पर विचार करना होगा कि भोजपुरी को भाषा क्यों बनाया जाए? उसके बोलने वालों की संख्या कितनी है? आदि।

जहां तक भोजपुरी का प्रश्न है तो प्राचीन काल से ही भोजपुरी क्षेत्र का इतिहास एवं उसकी परंपरा समृद्ध और गौरवशाली रही है। ऋषि-महर्षि, विद्वान, कलाकार राजनीतिज्ञ तथा इस धरती के वीरता की समृद्ध विरासत से इतिहास भरा पड़ा है। हालांकि भोजपुरी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करना आसान कार्य नहीं है। यह ज़्यादातर मौखिक रूप में ही विद्यमान है। लिखित साहित्य अधिकतर पद्य रूप में हैं जिनमें सर्वाधिक गीतों का संग्रह है। लोक गीत, लोक कथा एवं लोक गाथाओं के रूप में इसके साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, जिसका संकलन कर इसके साहित्य का एक बड़ा कोश तैयार किया जा सकता है।

संत कवियों एवं तुलसी, जायसी आदि अवधी के कवियों ने भी भोजपुरी संज्ञा, शब्दों एवं कहीं-कहीं क्रिया पदों का प्रयोग किया है। इन कवियों में कबीर का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। भोजपुरी बोली का सबसे प्राचीन नमूना इन्हीं की कविता में मिलता है। धरमदास की रचनाओं में भी भोजपुरी क्रियाओं का स्पष्ट उदाहरण मिलता है। संत परंपरा के कवि शिवनारायण ने कई हस्तलिखित ग्रंथों की रचना भोजपुरी में की है। प्रसिद्ध कवि लक्ष्मी साखी के ग्रंथों में भी इसके काफी उदाहरण मिलते हैं। ऐसे अनेकों प्रमाण संत कवियों के ग्रंथ और उनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं।

अगर भोजपुरी साहित्य के संदर्भ में इन सवालों का उत्तर खोजने की कोशिश की जाए तो हमें सबसे पहले मुगल काल और ब्रिटिश हुकूमत की तरफ देखना पड़ता है। हमें प्रमाण के तौर पर उन्हीं दस्तावेजों को खंगालना पड़ता है जिसे उन्होने अपनी जरूरत, अभिप्राय और तरकीब से लिखा। यद्यपि इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि उनमें से कुछ भाषा प्रेमियों ने भोजपुरी के लिए महत्त्वपूर्ण काम किया। जिसे आज भोजपुरी का प्रामाणिक दस्तावेज़ माना जाता है। निश्चित तौर पर इसमें जार्ज ए ग्रियर्सन का नाम सबसे पहले आता है, जिन्होंने भोजपुरी लोक गीतों के संग्रह और प्रकाशन हेतु बहुत काम किया है। आल्हा के विवाह गीत, आल्हा वध आदि तमाम लेख एवं किताबें भोजपुरी के संदर्भ में प्रकाशित कराई। इनके अलावा ह्यूज़ फ्रेचर के भोजपुरी गीतों का संग्रह, ए जी शिरेफ द्वारा संपादित पुस्तक हिंदी फोक सांग, जे कीम्स के हिंदी लोक एवं भोजपुरी गीतों का संग्रह तथा लेख इत्यादि भोजपुरी की महत्त्वपूर्ण तहरीर है।

भारतीय लोगों में भोजपुरी के कवि विसाराम की रचनाएं, कवि तेग अली की रचना बदमाश दर्पण, बाबू राम कृष्ण वर्मा की साहित्यिक पुस्तक विरह नायिका भेद, पंडित दूधनाथ उपाध्याय की प्रथम महायुद्ध के दौरान लिखी पुस्तिका भारती के गीत, उनकी रचना भूकंप पच्चीसी, अंबिका प्रसाद के भोजपुरी के गीत, भिखारी ठाकुर का नाटक बिदेसिया, मनोरंजन सिन्हा की कविता फिरंगिया, श्याम देहाती का देहाती दुलकी,

रामविचार पांडे की बिनिया-बिछिया और गोरख पांडेय की समाजवादी कविताएं इत्यादि रचनाएं भोजपुरी साहित्य की तमस्सुक हैं। भारत के बाहर मॉरिशस में ब्रजेंद्र कुमार भगत का मधु कलश, नंदलाल की सरल गीता, रामनाथ का सनातनीय विवाह के गीत, सुचिता रामदीन की संस्कार मंजरी, मॉरिशस में डॉ. सरिता बुद्धू, नीदरलैंड में पुष्पिता अवस्थी, फ़िजी में विवेकानंद वर्मा, थाईलैंड में मोहन के. गौतम इत्यादि रचनाकर एवं रचनाएं विश्व स्तर पर भोजपुरी साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं।

प्राप्त दस्तावेजों के आधार यह तर्कसंगत नहीं लगता कि भोजपुरी सिर्फ एक बोली है, भाषा नहीं। इसलिए इसे आठवीं अनुसूची में शामिल नहीं किया जा सकता। इसके बोलने वालों की संख्या पर भी गौर किया जाए तो भोजपुरी एसोशिएशन ऑफ इंडिया के आंकड़ों के मुताबिक भोजपुरी विश्व के पांच महादेशों में 18 करोड़ से अधिक लोगों की भाषा है और विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं में इसका दसवां स्थान है। उत्तर में हिमालय के तराई से लेकर दक्षिण में मध्य प्रांत की सरगुजा रियासत तक इसका विस्तार है। मातृभाषा के रूप में भोजपुरी भाषा भाषियों की संख्या लगभग दो करोड़ है जबकि मगही बोलने वालों की संख्या-62,35,782 है और मैथिली भाषियों की संख्या लगभग एक करोड़ है। इस प्रकार संख्या की दृष्टि से भोजपुरी बोलने वालों की संख्या बिहार की इन दोनों बोलियों के भाषियों की सम्मिलित संख्या से कहीं अधिक है। सन् 1921 की जनगणना के अनुसार भोजपुरी बोलने वालों की जनसंख्या दो करोड़ से भी अधिक थी। सन् 1941 में भोजपुरी भाषियों की संख्या कुल आबादी की 14.5 प्रतिशत थी। डॉ. ग्रियर्सन ने बंगाल के विभिन्न जिलों में रहने वाले भोजपुरियों की संख्या लगभग चार लाख आंकी वहीं आसाम के चाय बगानों में काम करने वाले भोजपुरियों की संख्या लगभग 66 हजार। इसके अतिरिक्त देश के कई स्थानों पर लाखों की संख्या में भोजपुरी लोग निवास करते हैं। इतना ही नही देश के बाहर भी मॉरिशस, फ़िजी, त्रिनीदाद, गुयाना, सूरीनाम, दक्षिण अफ्रीका, नेपाल, आदि कुछ प्रमुख देशों में बहुत बड़ी संख्या में भोजपुरी लोग पाये जाते हैं। भारत के आंकड़ो के अनुसार भारत में लगभग 3.3 करोड़ लोग भोजपुरी बोलते हैं। आज पूरे विश्व में भोजपुरी जानने वालों की संख्या लगभग 5 करोड़ है। जबकि गैर सरकारी आंकड़ो के मुताबिक इनकी संख्या बीस करोड़ से भी अधिक है। यहाँ एक सवाल और उठता है कि मैथिली, बोडो, संथाली, और डोगरी जैसी कम बोली जाने वाली भाषा को आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है तो भोजपुरी को क्यों नहीं? क्या इन सभी की भाषा, साहित्य और बोलने वालों की संख्या भोजपुरी से समृद्ध है?

इन सवालों पर विचार करें तो बोडो, संथाली, डोगरी, भले ही इन भाषाओं के बोलने वालों की संख्या सीमित है लेकिन यह एक समुदाय विशेष की भाषा है। अभी इन्हें संरक्षित करने और पर्याप्त सरकारी सहयोग की जरूरत है। अतः इन्हें आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाना वाजिब है। जहां तक मैथिली और भोजपुरी की बात है तो भोजपुरी संख्यात्मक दृष्टि से बिहार की मैथिली एवं मगही इन दोनो बोलियों के भाषियों की सम्मलित संख्या से कहीं अधिक है। अब तर्क यह उठता है कि मैथिली का साहित्य समृद्ध है। लेकिन वर्तमान में भोजपुरी, भाषा और साहित्य रचना की दृष्टि से मैथिली से कम नहीं है। यहाँ तक कि कई विश्वविद्यालयों जैसे इग्नू, नालंदा, बीएचयू, आदि में इसके एम ए, डिप्लोमा, एवं सर्टिफिकेट कोर्स भी चलाए जा रहे हैं। इस दृष्टि से देखें तो यहाँ यह कहना उचित है कि बोलियां ही भाषाओं की जननी होती हैं और उन्ही की रक्त-माँस-मज्जा से भाषाओं का गठन होता है। दरअसल भाषा सिर्फ एक भाषा नहीं होती बल्कि वह एक समाज का अंग और उस सभ्यता की

प्रतिनिधि भी होती है। भोजपुरी का दायरा दुनिया के कई देशों में फैला हुआ है। आज कई देशों में यह मातृ भाषा की तरह प्रयोग में है। भारत के अलावा दुनिया के कई प्रमुख देशों में बड़ी संख्या में भोजपुरी बोलने और समझने वाले लोग निवास करते हैं जो विश्व भर में अपनी भाषा, साहित्य, कला, धर्म, संस्कृति और राजनीति का प्रचार-प्रसार कर रहे है। इन देशों में भोजपुरी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये भोजपुरी भाषी ब्रिटिश सरकार द्वारा थोपे गए कारनामों के तहत बधुंआ श्रमिक (गिरमीटिया मजदूर) बनकर भारत से यहां आये थे।

मॉरिशस में भोजपुरी- मॉरिशस भारतीय महासागर में अफ्रीका से करीब 2500 मील दूर बसा एक छोटा देश है। प्रवासी भारतीयों का बड़ा दल सबसे पहले 1834 ई. में मॉरिशस गया था। एक समय था जब भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी राजसत्ता पर अधिकार करने लगी थी और भारत में एक प्रकार से अशांति फैली हुई थी। देश के कुछ प्रांतो जैसे उत्तर-प्रदेश, बिहार इत्यादि राज्यों में बेकारी तथा गरीबी चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी। लोगों के हालात ये थे कि ऐसे में वो कही भी जाने को मजबूर थे। उनकी इस विवशता का विभिन्न देशों के अधिकारी तथा जमींदार लाभ उठाने का प्रयत्न करने लगे। उसी समय मॉरिशस के जमींदारों ने भारतीय गरीबों को प्रभावित करने के लिए यह प्रचार-प्रसार किया कि वे विदेशों में जाकर बहुत धन कमा सकते हैं। कुछ लोग यह भी कहने लगे कि मॉरिशस टापू में पत्थर तोड़ने पर भी सोने के सिक्के मिलते है। इस प्रकार की बातों से उन बेकार भारतीयों में से बहुत से लोग यहां आने को तैयार होने लगे। फलस्वरूप भारत के विभिन्न प्रांतो जैसे- बिहार, उत्तर-प्रदेश, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल इत्यादि जगहों से प्रवासी यहां लाए गए। शुरूआती दौर में उनकी यहां बहुत दुर्दशा हुई। तमाम तरह की यातनाएं दी गयीं। दिन भर काम करने के बावजूद भी खाने का कोई व्यवस्थित इंतजाम न था। यहां तक कि एक दिन काम न करने पर उनके दो दिन के वेतन भी काट लिए जाते थे। हालात के मारे कितने मजदूरों ने आत्महत्या कर ली लेकिन बहुत से लोगों ने विपत्ति की घड़ी में हिम्मत और हौसले से काम किया।

"सन् 1834 के नवंबर महीने से सन् 1839 के मई महीने तक गिरमिटिया प्रणाली की प्रथम अवधि थी, जिसमें लगभग 25700 भारतीय हिंद महासागर के इस छोटे से द्वीप में आये। कुल मिलाकर 25000 पुरूष और 700 महिलाएं शक्कर कोठियों में काम करने के लिए लाए गए थे।" 1834 से 1910 तक यह सिलसिला चलता रहा। इस दौरान एक रिपोर्ट के मुताबिक लगभग साढ़े चार लाख भारतीय मॉरिशस लाए गए जिसमें दो लाख 90 हजार यहीं बस गए और 1 लाख 60 हजार लौटने वालों में कुछ दक्षिण अफ्रीका, फ़िजी, गुयाना तथा त्रिनीदाद में जाकर बस गए।

उन्नसवीं सदी के चैथे दशक के अंतर्गत और उसके बाद जो मजदूर अपने 5 साल के अनुबंध सेवा समाप्त कर यहीं रह गए थे वे अपनी से बसने लगे। कुछ लोगों ने यहीं अपना शादी-विवाह कर घर बसाया तथा 5वें से 7वें दशक तक आते-आते छोटे-मोटे ग्रामीण किसान के रूप में उभरने लगे।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में भारतीय मूल के मॉरिशस वासियों में लगभग 40 प्रतिशत लोग मूल्यवान कृषि योग्य भूमि के मालिक बन चुके थे। परिणामस्वरूप इनमें से अधिकतर लोग छोटे किसान बन गए और अन्य

छोटे पैमाने पर चीनी उत्पादक बन गए। बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की संतानें देश की राजनैतिक गतिविधियों में शामिल होने लगी।

भारत के बिहार तथा उत्तर-प्रदेश के लोग यहां अधिक संख्या में आये थे जो भोजपुरी बोलते थे। अन्य क्षेत्रों एवं भाषा के लोग भी थे लेकिन इन सब में भोजपुरी बोलने वालों की प्रधानता थी। मॉरिशस में लाकर इन भारतीयों को अलग-अलग गांवों में बसाया गया। किसी भी गांव में इन्हे बसाते समय इनकी भाषा, वर्ण, तथा धर्म आदि का ध्यान नही रखा जाता था। अतः हर गाँव, हर जमींदार के इलाके में विभिन्न भाषा-भाषी मजदूरों ने एक साथ रहकर बहुवर्गीय समाज की स्थपना की।

आज मॉरिशस की 50 प्रतिशत आबादी हिंदू है। वहां की दो तिहाई आबादी जनभाषा भोजपुरी बोलती है। "आज मॉरिशस की 69 प्रतिशत जनसंख्या भारतीय है। वहां की लगभग 8 लाख की आबादी में 4 लाख आबादी भोजपुरियों की है।" आज 40 मील की लंबाई और 29 मील की चैड़ाई वाला यह टापू भोजपुरी संस्कृति का प्रमुख केंद्र बन गया है।

मॉरिशस की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी है। लेकिन 'भोजपुरी' भारतीयों के क्रियाकलाप और उनके व्यवहार की भाषा है। वहां के ज्यादातर हिंदुओं की यह मातृभाषा है। खड़ी बोली के प्रचार के बावजूद भी गांव के लोग भोजपुरी में ही बात-व्यवहार करते है। मॉरिशस में भारतीयों की संख्या शुरू से ही अन्य जतियों से अधिक रही है। यहां भोजपुरी बोलने वाले लोगों में मुख्य रूप से हिंदू और मुसलमान थे। इनके संपर्क में रहते -रहते अन्य प्रवासी भारतीय भी इस भाषा के आदि हो गए। आज यहां भारतीयों को छोड़कर गैर भारतीय भी भोजपुरी बोलते और समझते है। "मॉरिशस के दैनिक जीवन में लोग मुख्यतया तीन भाषाओं के द्वारा संपर्क स्थापित करते है- 'फ्रेंच', 'क्रियोल', और 'भोजपुरी' जिसके कारण ये तीनों भाषाएं आपस में एक दूसरे से प्रभावित है।"

फ़िजी में भोजपुरी- फ़िजी भारत से हजारों मील दूर प्रशांत महासागर में स्थित छोटे-छोटे द्वीप समूह का एक देश है जहां भारतीयों का भी निवास है। भारत से लगभग 12 हजार मील दूर प्रशांत महासागर लगभग 844 द्वीपों की एक लंबी श्रंखला में फैली है जिनमें फ़िजी द्वीप सबसे बड़ा है। फ़िजी द्वीप के आदिवासी 'काइवाती' कहे जाते है। फ़िजी का वास्तविक नाम 'वीती' है जिसे अंग्रेजों ने फ़िजी बना दिया। ठीक वैसे ही जैसे इरानियों ने 'सिंध' को 'हिंद' और फिर अंग्रेजों ने हिंद को 'हिंदिया' तथा बाद मे 'इंडिया' बना दिया। कुछ विद्वान फ़िजी और भारत का संबंध प्राचीन काल से मानते आये है। उनका मानना है कि फ़िजी वही रमणीक द्वीप है जिसका उल्लेख श्रीमद्भग्वद्गीता में मिलता है। फ़िजी में भोजपुरी भाषा का उदय और भारतीयों के आगमन का इतिहास विश्व की एक महत्त्वपूर्ण घटना है जो लगभग 130 साल पुरानी है, जब शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत मजदूरो का प्रथम दल 19 मई 1879 को 'लियोनीदास' जहाज द्वारा फ़िजी पहुंचा जिसे गिरमिट कहा जाता है। बिहार, उत्तर-प्रदेश, पंजाब, और कुछ दक्षिण प्रदेशों से पहुंचे भारतीय मजदूरों के साथ ही भोजपुरी तथा हिंदी भाषा, साहित्य और भारतीय संस्कृति फ़िजी पहुंची। यह काल भारतीय मजदूरों के लिए घोर संकट तथा विपत्ति का समय था। इन्होने शारीरिक , मानसिक यातनाएं सहने के बावजूद अपने धर्म, अपनी संस्कृति तथा भाषा को जीवित रखा।

आंकड़ो के मुताबिक सन् 1879 से लेकर सन् 1916 तक 60,553 भारतीय गिरमिट की प्रथा में फंसकर फ़िजी द्वीप में गए। सन् 1916 में गिरमिट काल में भारतीयों के प्रति अमानवीय व्यवहार के कारण क्रांति होने लगी जिसके कारण गिरमिट प्रथा को समाप्त करना पड़ा। सन् 1920 में यह प्रथा पूर्णतः समाप्त हो गयी। गिरमिट की अवधि को पूरे कर कितने ही भारतीय स्वदेश लौट आये लेकिन इनमें से अधिकतर फ़िजी में ही रहकर स्वतंत्र रूप से खेती तथा व्यापार करने लगे। इनमें से अधिकांश अशिक्षित थे फिर भी उन्होनें अपनी लगन और मेहनत से फ़िजी के सामाजिक तथा आर्थिक विकास में पूरा-पूरा हाथ बटाया। आर्थिक कठिनाइयों तथा भेदभाव को झेलते हुए भी उन्होनें अपनी संतानो को शिक्षित करने में कोई कसर नही छोड़ी। इन्हीं पूर्वजों की मेहनत और त्याग के फलस्वरूप 'फ़िजी' द्वीप आज प्रशांत महासागर के 'स्वर्ग' के नाम से प्रसिद्ध है।

"शुरूआती दौर में लगभग 500 भारतवासी अपनी मातृभूमि को छोड़ कैदियों और गुलामों की तरह 'फ़िजी' जा रहे थे जहां पहुंचने पर उन्हे रहने के लिए मात्र डेढ़ फुट चौड़ी और छः फुट लंबी जगह प्रत्येक व्यक्ति को दी गयी । इतनी जगह एक मनुष्य के लिए कितनी पर्याप्त हो सकती है आप स्वयं विचार कर सकते हैं।"

आज फ़िजी के साथ भारत का संपर्क बहुत घनिष्ट है। वर्तमान में फ़िजी की जनसंख्या लगभग साढ़े-पांच लाख है जिनमें भारतवंशियों की संख्या लगभग पौने-तीन लाख के आस-पास है। आज के फ़िजी की अंतरजातीय एकता और सद्भावना फ़िजी के उज्जवल भविष्य का सूचक है। फ़िजी के भारतवंशी तमिल, तेलगु, केरल, राजस्थान, पंजाब, बिहार तथा उत्तर-प्रदेश इत्यदि प्रांतों से आये थे। आज वे अपने परिवार सहित हिंदी के साथ-साथ अपनी लोक भाषा बोलते है। फ़िजी में जहां अनेक देशीय एवं देशज शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हो रहा है वहीं भोजपुरी और अवधी मुख्यतः इस बोली की धुरी रही है। आज भी प्रवासी भारतीयों में धर्म और संस्कारों का अभूतपूर्व सम्मान है। उनके जीवन के वे अभिन्न अंग है। भोजपुरी-अवधी मिश्रित हिंदी वहां के प्रवासी भारतीयों की पहचान और घरेलू भाषा है। फ़िजी की हिंदी का भी मूल अधार भोजपुरी तथा अवधी ही है।

त्रिनीदाद में भोजपुरी- त्रिनीदाद के लिए भोजपुरी का कोई बहुत प्राचीन इतिहास नही है। भारतवर्ष में भोजपुरी के जो रूप प्रचलित है उन्ही में से एक रूप का यहां विकास हुआ है। परंतु इस बोली ने प्रवासी भारतीयों को त्रिनीदाद जैसे सुदूर टापूओं वाले देश में एक दूसरे से जोड़कर रखा है। सबसे बड़ी विडंबना रही कि जब वहां रानीतिक वर्चस्व का समय आया तो भोजपुरी को दरकिनार कर सबने अंग्रेजी का दामन थाम लिया। बावजूद इसके भोजपुरी वहां आज तक जीवित है।

त्रिनीदाद में भोजपुरियों से पहले कुछ लोग वहां पहुचे थे परंतु किसानी पृष्ठभूमि से पहली बार वहां भारतीय प्रवासी ही पहुंचे। धीरे-धीरे भोजपुरियों ने अपने काम-काज में दक्षता के साथ ही सामाजिक संरचना भी शुरू कर दी। भोजपुरी के माध्यम से यहां के समुदाय की पहचान बनने लगी और यही भाषा पहचान के अतिरिक्त संपर्क भाषा भी बन गयी। चूंकि भारत से हिंदी बोलने वाला प्रबुद्ध वर्ग त्रिनीदाद नही पहुंचा इसलिए प्रवासी भोजपुरियों के साथ भाषा की जटिल समस्या बनी रही क्योंकि कि वे अपने पुराने परिवेश में हिंदी को केंद्रीय और संपर्क भाषा मानते थे । इसलिए उनका झुकाव स्वभावतः अंग्रेजी की तरफ हुआ। जिसे खेतों के मालिक भी बोलते थे। इसलिए

प्रवासी भारतीयों ने अंग्रेजी को संकोच के साथ स्वीकार किया। भोजपुरी परस्पर संपर्क भाषा के रूप में विकसित होने लगी । यद्यपि भारत वर्ष में भोजपुरी को यह स्थान कभी प्राप्त नही हुआ।

किसी भाषा का मानकीकरण साकारात्मक और नाकारात्मक दोनों पक्षों से ग्रसित होता है। जब त्रिनीदाद में भोजपुरी का प्रयोग जनजीवन की भाषा के रूप में होने लगा तब जो भाषा इसके पूर्व वहां आयी थी वह पृष्ठभूमि में जाने के लिए अभिशप्त हो गयी। केवल तमिल ही भोजपुरी के झोंके को एक सीमा तक झेल सकी। यद्यपि भोजपुरी का एक खास सीमा से आगे बढ़ना संभव नही था। यही वजह था कि प्रवासी भारतीय वहां की कुछ अन्य बोलियों में भी रूचि लेने लगे ताकि सह अस्तित्त्व की भावना को बल मिले। परंतु अन्य बोलियों में भी भोजपुरी के कुछ शब्दों के प्रयोग प्रचलन में होते गए। इस प्रकार त्रिनीदाद के प्रवासी भारतीयों में भोजपुरी भाषा के बोलने वालों में भारत की अपेक्षा अधिक एकरूपता उत्पन्न हो गयी। भोजपुरी में जो परिवर्तन हुआ वह अचानक न होकर क्रमिक रहा और भारतवर्ष में जो काम हिंदी से लिया जाता था वही यहां भोजपुरी से लिया जाने लगा।

सूरीनाम में भोजपुरी- कैरेबियन देशों में सूरीनाम एक ऐसा देश है जहां के लोग भारतीय संस्कृति और दर्शन में अत्यधिक रूचि रखते है। भारतीय मजदूर के रूप में आये स्त्री-पुरूष अपने साथ धर्म संस्कृति और अपनी भाषा लेकर आये थे। 19 सितम्बर 1870 को हालैंड, इंग्लैंड की सरकार के शर्तनामें के अनुसार भारत से सूरीनाम मजदूर पहुंचाए गए। अधिकतर मजदूर उत्तर-प्रदेश और कलकत्ता के थे। इन मजदूरों को लोग 'कूली' और 'कलकतिया' कहकर पुकारते थे। सूरीनाम में 1873 से लेकर 1916 तक कुल 33,000 शर्तबंद मजदूर पहंचे जिनमें से लगभग 11,000 अपनी शर्तबंदी का समय पूरा करके भारत लौट गए। शेष 22,000 हौलैंड और सूरीनाम में जाकर बसे । साढ़े-चार लाख भारतीयों की आबादी वाले इस छोटे से देश में सौ से भी अधिक हिंदी भाषा के स्कूल है। आम बोल-चाल की भाषा में लोग 'सूरनामी' का प्रयोग करते है जो भोजपुरी और अवधी का एक रूप है इसके अलावा वहां मुख्य रूप से 'डच' और 'क्रियोल' का ज्यादा प्रचलन है। सूरीनाम के अधिकांश हिंदुस्तानी की मातृभाषा को वहां के लोग 'सरनामी' कहते है। सरनामी शब्द 70 के दशक में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उभरकर सामने आया। जिसे प्रायः अधिकांश हिंदुस्तानियों ने अपनी मातृभाषा के रूप में अपनी बोली भोजपुरी और अवधी के बदले स्वीकार किया।

दक्षिण अफ्रीका में भोजपुरी- दक्षिण अफ्रीका में मुख्य रूप से 6 भारतीय भाषाएं प्रचलित है, जिसमें तमिल, हिंदी, भोजपुरी, गुजराती, उर्दू और तेलगु है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य भाषाएं भी लघु समुदायों द्वारा बोली जाती हैं। दक्षिण अफ्रीका में भी फ़िजी, मॉरिशस, त्रिनीदाद आदि की तरह तमिल, हिंदी, भोजपुरी, उर्दू और तेलगु भाषी 1860 ई. से यूरोपीय उपनिवेशों के लिए शर्तबंद मजदूर के रूप में लाए गए। भारत से दक्षिण भारतीयों की अपेक्षा उत्तर भारतीय अधिक संख्या में वहां आये। इनके बोल-चाल की हिंदी अनेक उप-बोलियों की अपेक्षा भोजपुरी के अधिक निकट है। दक्षिण अफ्रीका में गए प्रवासी भारतीयों की भाषा मुख्य रूप से हिंदी, भोजपुरी और अवधी का मिश्रित रूप दिखती है। अंग्रेजी वहां की राज-काज की भाषा है जबकि हिंदी वहां की द्वितीय भाषा है। भोजपुरी, अवधी ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ घरों में बोली जाती है। इन प्रमुख देशों के अलावा दुनिया के कई ऐसे देश है जहां भोजपुरी का प्रचार-प्रसार है।

इन सभी विवरणों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा सकता है कि आज विश्व के हर कोने में प्रवासी भारतीय भोजपुरी भाषा एवं संस्कृति का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

इन सभी पहलुओं पर गंभीरता से विचार करने के बाद यह कहीं से जायज नहीं लगता कि भोजपुरी को आठवीं अनुसूची में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। दरअसल जब भी भोजपुरी का आंदोलन जोर पकड़ता है तब तथाकथित हिंदी प्रेमियों के मन में हिंदी के भविष्य को लेकर चिंता पैदा होने लगती है। अब यहाँ सबसे बड़ा और प्रमुख सवाल यह खड़ा होता है कि भोजपुरी अगर भाषा बन गई तो क्या हिंदी कमजोर हो जाएगी? हिंदी राष्ट्रभाषा के लिए जो संघर्ष कर रही है, क्या वह संघर्ष कमजोर पड़ जाएगा? भोजपुरी के बाद ब्रज, अवधी, आदि हिंदी की बोलियों को भी भाषा बनाने का आंदोलन अगर खड़ा हुआ तो क्या हिंदी राजभाषा भी रह पाएगी? ये महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं जिसपर गंभीरता से विचार किया जाना बाकी है। हालांकि दो-ढाई सौ वर्ष पहले विकसित हुई हिंदी और लगभग सौ वर्षों के खड़ी बोली के विकासक्रम को देखें तो हिंदी के भविष्य को लेकर कोई संशय नहीं है। हिंदी और खड़ी बोली की भाषाई विकास यात्रा में लोकबोली या लोक भाषाओं की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। हिंदी की विपुल शब्द-संपदा में बृज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, या अंगिका, वज्जिका समेत तमाम लोक बोलियों के योगदान को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते। हिंदी भाषा का साहित्य जितना ही नवीन है, लोक भाषा का मौखिक साहित्य उतना ही पुराना है। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं है कि आज भी ये बोलियाँ हिंदी के लिए खाद-पानी का काम कर रही हैं। यह सच है कि जैसे-जैसे हिंदी परिष्कृत होती गई, लोक से उसकी नज़दीकियाँ और बढ़ी है। आखिर बोलियों की परंपरा को काटने के बाद हिंदी के पास बचता क्या है? यह महत्त्वपूर्ण अकादमिक प्रश्न है। इस संदर्भ में वरिष्ठ साहित्यकार विभूति नारायण राय ने लिखा कि हिंदी के भविष्य का प्रश्न हिंदी के स्वरूप से जुड़ा है। यदि भविष्य में भी हिंदी का स्वरूप समवेशी बना रहा और उसने दूसरी भाषाओं या बोलियों को आत्मसात करने की अपनी क्षमता बरकरार रखी, तो उसके लिए कोई खतरा नहीं है। आज लोक बोलियों एवं भाषाओं का संरक्षण, संवर्धन हिंदी के लिए भी उतना ही जरूरी है जितना कि स्वयं उसके लिए।

कैफ़ी, कैफियत और 'कैफियात'

डॉ. एहसान हसन[1]

उर्दू की प्रगतिशील काव्य धारा के चर्चित शायरों में कैफ़ी आज़मी की गणना होती है। कैफ़ी का जन्म उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ जनपद के मिजवाँ ग्राम में 15 अगस्त, सन् 1918 ई.[1] को, एक ज़मींदार परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम सैय्यद फ़तेह हुसैन रिज़वी था। कैफ़ी का वास्तविक नाम सैय्यद अतहर हुसैन रिज़वी था, बाद में शायरी के सिलसिले में उन्होंने अपना उपनाम 'कैफ़ी' रख लिया और फिर इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। कैफ़ी के परिवार में सब बहुत पढ़े-लिखे और ऊँचे ओहदे वाले थे। घर में तालीम और तहज़ीब का माहौल था। अक्सर काव्य गोष्ठियां हुआ करतीं। बचपन से ही कैफ़ी का रूझान शेर-ओ-शायरी की तरफ़ हो गया था और उन्होंने ग्यारह वर्ष की उम्र में अपनी पहली ग़ज़ल कही। जिसके दो शेर प्रस्तुत हैं-

इतना तो जिन्दगी में किसी के ख़लल पड़े,
हँसने से हो सुकून न रोने से कल पड़े।
मुद्दत के बाद उसने जो की लुत्फ़ की निगाह,
जी ख़ुश तो हो गया मगर आँसू निकल पड़े।

कैफ़ी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई और बाद में मौलवी बनाने की ग़रज़ से उन्हें लखनऊ के एक मदरसे 'सुल्तानुलमदारिस' में दाखिल करा दिया गया। शीघ्र ही, जहां की दकियानूसी और पुरातनपंथी व्यवस्था के खिलाफ़ कैफ़ी ने आवाज उठानी शुरू कर दी। अपने साथियों की मदद से मदरसे के प्रबंधतंत्र के खिलाफ़ बाक़ायदा तौर पर आंदोलन छेड़ दिया। विरोधों और धरना-प्रदर्शन में कैफ़ी अपनी जोशीली व इंक़लाबी नज़्में सुनाया करते। इसी दौरान कैफ़ी अली अब्बास हुसैनी, सैय्यद एहतेशाम हुसैन और अली सरदार जाफ़री के संपर्क में आए। इन लोगों की सोहबत से कैफ़ी के विचारों को न सिर्फ़ प्रोत्साहन मिला बल्कि प्रखरता और स्पष्टता भी प्राप्त हुई। यहीं से उस नींव का निर्माण हुआ जिस पर कैफ़ी की राजनीति, समाज और साहित्य की वैचारिक संरचना स्थापित हुई। मदरसे से कैफ़ी का संबंध टूट गया, इस बात को उर्दू की एक लेखिका 'आयशा सिद्दीक़ी' ने अपने एक लेख में कुछ यूँ लिखा है- *"कैफ़ी साहब को उनके बुज़ुर्गों ने एक दीनी दर्सगाह में इस ग़रज़ से दाखिल किया था कि वहां ये फ़तेहा पढ़ना सीख जाएंगे। कैफ़ी साहब उस दर्सगाह में मज़हब पर फ़तेहा पढ़ के निकल आए।"* बाद में कैफ़ी ने लखनऊ और इलाहाबाद युनिवर्सिटी से प्राइवेट परीक्षाएं दे कर उर्दू, फ़ारसी और अरबी की कई डिग्रियां हासिल कीं।

अली सरदार जाफ़री जो उस वक़्त 'ऑल इंडिया स्टूडेंट्'स फेडरेशन' (A.I.S.F.) में सक्रिय थे, कैफ़ी को कानपुर की मज़दूर सभाओं और ट्रेड यूनियनों में ले गए। जहां पर कैफ़ी ने श्रमिक वर्ग की समस्याओं को क़रीब से देखा और हक़ व इंसाफ़ की लड़ाई में उनके साथ शामिल हो गए। यहीं पर कैफ़ी कम्युनिस्ट

[1] असिस्टेंट प्रोफेसर, उर्दू विभाग, बनारस हिंदू युनिवर्सिटी, वाराणसी-221005 Mob. 09935352141,
E-mail - screenscholar@yahoo.com

लिटरेचर से भी वाकिफ़ हुए और फिर आगे बाक़ायदा तौर पर कम्युनिस्ट पार्टी से जुड़ गए। यहां ध्यान देने योग्य बात है कि कम्युनिस्ट विचारधारा पूँजीवाद एवं ज़मींदारी के बिल्कुल खिलाफ़ होती है और एक ज़मींदार परिवार का युवक कम्युनिस्ट होने में इस स्वीकारोक्ति के साथ, "अब मुझे वह रास्ता मिल गया जिस पर मैंने जिंदगी का इतना लंबा सफ़र तय किया।" गर्व महसूस करता है।

धीरे-धीरे कैफ़ी की गतिविधियाँ बढ़ती गई और वह 'प्रगतिशील लेखक संघ' (P.W.A.) से भी जुड़ गए। अली सरदार जाफ़री और सैय्यद एहतेशाम हुसैन वग़ैरह इस संघ के प्रमुख लोगों में थे। बढ़ती रूचि और काम करने की लगन कैफ़ी को बंबई (अब मुंबई) खींच ले गई और वहां पर वह समान रूप से 'प्रगतिशील लेखक संघ' तथा कम्युनिस्ट पार्टी की गतिविधियों में सक्रिय हो गए, यह सन् 1943 ई. का समय था। ऐसा माना जाता है कि तत्कालीन 'प्रगतिशील लेखक संघ' कम्युनिस्ट पार्टी का साहित्यिक प्रकोष्ठ था। जिसके अधिकांश सदस्य पार्टी मेंबर भी थे और 'प्रगतिशील लेखक संघ' की वैचारिकता, रचनात्मकता, अभिव्यक्ति, शैली आदि-आदि प्रखर कम्युनिस्ट विचारधारा पर आधारित होती थी। उस समय बंबई इन सब के केंद्र की हैसियत ले चुकी थी। कैफ़ी की नज़्में कम्युनिस्ट पार्टी के अख़बार 'क़ौमी जंग' में प्रकाशित हो रही थीं। उन दिनों में कैफ़ी की साहित्यिक सरगर्मी की तरफ़ इशारा करते हुए डॉ. रामबिलास शर्मा लिखते हैं- *"बंबई में कई बार साथियों ने मार्क्सवाद और साहित्य पर बोलने के लिये आमंत्रित किया। अनेक बार मैं आगरा से बंबई गया। इस्मत चुग़ताई के घर पर बैठकें होती थीं। वहां ज़्यादातर उर्दू के लेखक आते थे। कैफ़ी आज़मी इनमें आगे बढ़ कर हिस्सा ले रहे थे।"*

वर्ष 1947 ई. में हैदराबाद में 'प्रगतिशील लेखक संघ' का सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें अली सरदार जाफ़री, मजरूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी वग़ैरह के साथ कैफ़ी आज़मी भी शामिल हुए। इस सम्मेलन में एक मुशायरा भी हुआ और कैफ़ी ने अपनी नज़्म "ताज" सुनाई जो बहुत सराही गई। ख़ास तौर से नज़्म की इस पंक्ति "ये वो कश्कूल-ए-गदाई है जो भरता ही नहीं" पर बहुत वाह-वाह हुई। दरअसल यह नज़्म निज़ाम हैदराबाद का सांकेतिक रूप में विरोध थी और फिर तो कैफ़ी की हिम्मत व बेबाकी के चर्चे शुरू हो गए। इसी मुशायरे में एक मोहतरमा अपने भाई के साथ आई हुई थीं, कैफ़ी से वह कुछ अधिक ही प्रभावित हुईं जिसका एहसास कैफ़ी को भी हो गया, दोनों की आँखें चार हुईं, दोनों ने एक-दूसरे की भावनाओं को समझा और बात आगे बढ़ गई। थोड़े ही दिनों बाद उन मोहतरमा की कैफ़ी से शादी हो गई और वह 'शौकत कैफ़ी' के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

शादी के बाद कैफ़ी के साथ शौकत भी उसी कमरे में रहने लगीं जो कमरा कम्युनिस्ट पार्टी ने बंबई के अँधेरी कम्युन में कैफ़ी को रहने के लिये दे रखा था। वो दिन ही अजब थे, परेशानी और तंगदस्ती के लेकिन साथ ही साथ जोश व जज़्बा और कर्मठता के भी। उन दिनों को याद करते हुए शौकत कैफ़ी लिखती हैं- *"दरअसल मैं पार्टी मेंबर नहीं थी इसलिए पार्टी मेरे खानें के तीस रूपये नहीं देती थी। कैफ़ी को कमाने पड़ते थे। चूँकि कैफ़ी होलटाइमर थे इसलिए पैसे कमाने के लिये ज़्यादा वक़्त नहीं दे सकते थे। उन्होंने उर्दू के एक डेली पेपर 'जम्हूरियत' में पांच रुपया रोज़ पर एक तन्जिया-मज़ाहिया नज़्म लिखनी शुरू की। रोज़ उन्हें*

कोई न कोई नया मौजूअ सोचना पड़ता था। वह बेचारे रोज़ सुबह पांच बजे उठ कर, किसी दरख़्त के नीचे बैठ जाते और लिखने लगते। उन्हें इस तरह लिखते देख कर मेरा दिल कट सा जाता लेकिन मैं उनकी कोई मदद नहीं कर सकती थी।"

कैफ़ी आज़मी और शौकत का पहला बच्चा एक बेटा था जो अधिक दिनों तक जीवित न रहा, बीमारी की वजह से उसकी मौत हो गई। दूसरे बच्चे के रूप में शबाना बिटिया थी। संयोग देखिये कि पहले बच्चे के जन्म के समय कैफ़ी बंबई से लग-भग तीस मील दूर भिवंडी में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के ऐतिहासिक सम्मेलन के आयोजन में व्यस्त थे और शबाना की पैदाइश के वक़्त कैफ़ी भूमिगत चल रहे थे। इन विकट परिस्थितियों का शौकत ने बड़ी दिलेरी से सामना किया। इन तमामतर झंझावातों में कैफ़ी विचलित न हुए और निरंतर अपनी कर्मठता व सक्रियता बरक़रार रखी, चाहे वह पार्टी के स्तर पर रही हो या फिर साहित्य सृजन व 'प्रगतिशील लेखक संघ' के स्तर पर। कैफ़ी की मेहनत और उनके महत्त्व को समझते हुए उन्हें 'इप्टा' का अध्यक्ष और फिर 'अपना अदब' का संपादक बना दिया गया। इन दोनों ही भूमिकाओं के साथ कैफ़ी ने लगन व परिश्रम से पूर्णतया न्याय किया। बाद में आर्थिक दुश्वारियों ने कैफ़ी को फिल्मों की तरफ़ मोड़ दिया जहां गीतों के साथ-साथ पटकथा और संवाद लेखन में भी उन्होंने अपना कमाल दिखाया। फिल्म 'गर्म हवा' के लिये कैफ़ी को राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला।

कैफ़ी की जिंदगी में एक अहम मोड़ उस वक़्त आया जब 9 फ़रवरी, 1973 ई. को उन पर फ़ालिज का ज़बरदस्त हमला हुआ और वह मौत के क़रीब पहुंच गए। लेकिन अदम्य जिजीविषा से भरे कैफ़ी ने मौत को मात दी, हालांकि इस संघर्ष में उनका एक हाथ और पैर लकवाग्रस्त हो गया। इसके बावजूद कैफ़ी सक्रिय रहे और विभिन्न मुशायरों, गोष्ठियों, सम्मेलनों और पदयात्राओं में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते रहे। सन् 1975-76 के दौरान 'प्रगतिशील लेखक संघ' को नवसृजित करने के सिलसिले में अली सरदार जाफ़री और मजरूह सुल्तानपुरी वग़ैरह के साथ देश के विभिन्न हिस्सों की यात्रा की। कैफ़ी ने अपनी शारीरिक मजबूरी को कभी भी अपनी कर्मठता और सक्रियता पर हावी न होने दिया। जीवन के आखिरी दौर में कैफ़ी ने अपने गांव 'मिजवाँ' की सुध ली और उसकी काया पलट कर दी। 'मिजवाँ' को तमामतर बुनियादी सुविधाओं मसलन बिजली, पानी, सड़क, अस्पताल, स्कूल, डाकघर, टेलीफ़ोन आदि-आदि से सुसज्जित कर दिया। यह उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता और अपनी मिट्टी से लगाव का अनूठा नमूना है। कैफ़ी अपने एक लेख 'मैं और मेरी शायरी' में लिखते हैं-

"अपने बारे में यक़ीन के साथ सिर्फ इतना कह सकता हूँ कि
मैं महकूम हिंदोस्तान में पैदा हुआ, आज़ाद हिंदोस्तान में बूढ़ा
हुआ और सोशलिस्ट हिंदोस्तान में मरूँगा।"

उनकी यह ललक पूरी हुई या नहीं, क्या कहा जा सकता है? कि काम और कलाम का यह कर्मठ व्यक्तित्त्व 1 मई, सन् 2002 ई. को इस संसार से विदा हो गया।

'कैफियात' कैफ़ी आज़मी का समग्र रूप में काव्य संकलन है, जिसके अध्ययन से कैफ़ी की शायरी के विभिन्न पहलुओं को समझा जा सकता है। यहां संक्षेप में कुछ प्रमुख पहलुओं पर रौशनी डाली जा रही है।

कैफ़ी आज़मी की शायरी में विरोध का स्वर प्रमुखता से दिखाई पड़ता है। कैफ़ी ने मेहनतकश मज़दूर वर्ग के समर्थन में, उनके हक़ की लड़ाई में, पूंजीपति धनाढ्य वर्ग का विरोध किया। उनकी नज़्म "धुँआ" की ये पंक्तियां देखें-

साथ उड़ती हुई ले के अँगड़ाइयां,
घड़घड़ाती मशीनों की परछाइयां।
दामन-ए-तार पर जाबजा नक़्शगीर,
खून-ए-मज़दूर की आड़ी तिरछी लकीर।

इसी तरह कैफ़ी की नज़्म "ताज महल" में भी बड़े ही संवेदनशील ढंग से विरोध का स्वर मुखर है-

दोस्त! मैं देख चुका ताजमहल...वापस चल,
ख़ुद-ब-ख़ुद फिर गए नज़रों में बअंदाज़-ए-सवाल,
वे जो रस्तों पे पड़े रहते हैं लाशों की तरह,
ख़ुश्क हो कर जो सिमट जाते हैं बेरस एसाब,
धूप में खोपड़ियां बजती हैं ताशों की तरह।
दोस्त! मैं देख चुका ताजमहल...वापस चल,

विरोध के समानांतर ही कैफ़ी के यहां जन-जागरण का नारा भी सुनाई पड़ता है। जनता की जागृति और उठ खड़े हो कर लड़ने की ललकार का स्वर भी उनकी शायरी का प्रमुख विषय बना। कैफ़ी की नज़्म "जगावा" की ये पंक्तियां देखें-

बेदाद के हाथों में कड़कती है कमां देख,
मैदान में इनसान के लाशे हैं तपां देख,
उठ रंग-ए-फ़लक, रंग-ए-ज़मीं, रंग-ए-जहां देख,
भारत के जवां ऐ मेरे भारत के जवां देख।

कैफ़ी की शायरी में 'स्त्री-विमर्श' और 'नारी-जागरण' के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। 'जीवन संगिनी' शब्द की सार्थकता सिद्ध करती उनकी नज़्म "औरत" जिसका एक उत्कृष्ट नमूना है। चंद पंक्तियां देखें-

गोशा गोशा में सुलगती है चिता तेरे लिये,
फ़र्ज़ का भेष बदलती है क़ज़ा तेरे लिये,

क़हर है तेरी हर इक नर्म अदा तेरे लिये,
ज़हर ही ज़हर है दुनिया की हवा तेरे लिये,
रुत बदल डाल अगर फूलना फलना है तुझे,
उठ मेरी जान! मेरे साथ ही चलना है तुझे।

कैफ़ी के यहां हमें प्रगतिशील दृष्टिकोंण से प्रेरित सौंदर्यबोध प्रमुखता से मिलता है। मेहनत और कर्मठता से युक्त सौंदर्य उनके यहां आदर्श रूप में स्वीकृत है। कैफ़ी की नज़्म "नया हुस्न" की ये पंक्तियां देखें-

जिंदगी चलती रही काँटों पे, अंगारों पर,
जब मिली इतनी हसीं, इतनी सुबुक चाल तुझे,
अब न झपकेगी पलक, अब न हटेंगी नज़रें,
हुस्न का मेरे लिये आखिरी मेयार है तू।

इन सब बातों के अलावा कैफ़ी की शायरी देश-प्रेम और स्वाधीनता के भावों को भी प्रभावी रूप में प्रस्तुत करती है। 'कैफियात' की अधिकांश नज़्में किसी न किसी रूप में मुल्क के प्रति कैफ़ी की मुहब्बत, फिक्रमंदी और उनके प्रगतिशील विचारों का प्रतिनिधित्त्व करती हैं। नज़्म "माहौल" की ये पंक्तियां देखें-

मेरे मुतरिब न दे लिल्लाह मुझको दावत-ए-नग़मा,
कहीं साज़-ए-ग़ुलामी पर ग़ज़ल भी गाई जाती है।

नज़्म "नौजवान" की ये पंक्तियां-

हम बसाएंगे सजाएंगे सँवारेंगे तुझे,
हर मिटे नक़्श को चमका के उभारेंगे तुझे,
अपनी शह रग का लहू दे के निखारेंगे तुझे,
दार पर चढ़ के फिर इक बार पुकारेंगे तुझे,
राह अग़यार की देखें ये भले तौर नहीं,
हम भगत सिंह के साथी हैं कोई और नहीं।

कैफ़ी ने अपने समय के राजनीतिक मुद्दों को भी अपनी शायरी में प्रमुखता से प्रस्तुत किया। चाहे वह रूस को ले कर हो या भारत को या फिर संपूर्ण अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य को लेकर। कम्युनिस्ट इकाई के टूटने पर "आवारा सजदे" जैसी नज़्म कही। इसी प्रकार "लेनिन", "रूसी आवाम और जंग", "रूसी औरत का नारा", "मक़्तल-ए-बैरूत", "बंगला देश", "नज़र-ए-कराची", "आखिरी जंग", "तेलंगाना" जैसी नज़्में भी राजनीतिक विषयों पर आधारित हैं। कैफ़ी ने देश के नाज़ुक सियासी हालात को देखते हुए बाक़ायदा तौर पर एक मसनवी "ख़ाना जंगी" की रचना की। इसी तरह उनकी नज़्म "इबलीस की मजलिस-ए-शूरा, दूसरा इजलास" तत्कालीन अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य की पड़ताल करती है।

कैफ़ी के यहां सामाजिक कुरीतियों पर भी नज़्में मिलती हैं। जिसकी बेहतरीन मिसाल के तौर पर नज़्म "बेवा की खुदकुशी" का नाम लिया जा सकता है। कैफ़ी ने अपनी शायरी में सांप्रदायिकता का बहुत ही संवेदनशील तरीक़े से विरोध किया। उनकी नज़्में "बहुरूपनी", "सोमनाथ", "साँप", "दूसरा बनबास" वग़ैरह जिसकी सशक्त अभिव्यक्ति हैं।

इन सब सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ कैफ़ी की शायरी में प्रेम की निजता और उसकी घनीभूत पीड़ा भी है। यहां भी क़ुर्बानी नज़र आती है। समर्पण है, यह समर्पण अपने आदर्श प्रेम के प्रति है। कहीं कोई भ्रम की स्थिति नहीं है, भटकाव नहीं है अपितु एक दृढ़ किंतु शालीन स्थायित्त्व है। उनकी ग़ज़लें जिसकी सशक्त अभिव्यक्ति हैं-

जो वो मेरे न रहे मैं भी कब किसी का रहा,
बिछड़ के उनसे सलीक़ा न जिंदगी का रहा।

और ये शेर-

पाया भी उनको खो भी दिया चुप भी हो रहे,
इक मुख़्तसर सी रात में सदियां गुज़र गईं

कैफ़ी आज़मी जिंदगी की आग में तप कर कुंदन की मानिंद हो गए थे। यही वजह थी कि अत्यंत विवशताओं में भी वह अपने काम में लगे रहे। उन्होंने जिंदगी को बहुत क़रीब से देखा था और एक ऐसा इंसान जो जीवन की कटु वास्तविकताओं से रूबरू होता रहता है, उसके अंदर एक स्थायित्त्व आ जाता है। यह स्थायित्त्व हिम्मत और दिलेरी का होता है, अर्थात न तो ख़ुशी उसे सरमस्त कर देती है और न ही ग़म उसे विचलित कर पाता है। कैफ़ी ऐसे ही थे। परिस्थितियां अपने प्रभाव से उन को अधिक प्रभावित नहीं कर पाती थीं। उनका जो ध्येय था उसकी प्राप्ति हेतु वह निरंतर प्रयत्नशील रहते। उनकी शायरी में भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उनका यह स्वभाव प्रविष्ट है। कहानीकार 'कृष्न चंदर' ने इस सिलसिले में क्या ख़ूब कहा है-

"कैफ़ी की शायरी दरअसल पत्थर की शायरी है यानी जब शायर अपना सीना पत्थर कर लेता है और ज़ुल्म की दीवार से टकरा कर शायरी का शरार पैदा करता है, लेकिन कैफ़ी की शायरी सिर्फ़ पत्थर की शायरी ही नहीं है वह एक नरम दिल इंसान की भी शायरी है। कैफ़ी ने एक गुदाज़ दिल की शायरी भी की है और सिर्फ़ वही शख़्स ऐसी शायरी कर सकता है जिसने पत्थरों से सर टकराया हो और सारे जहां के ग़म अपने सीने में समेट लिये हों।"

NOTES FOR AUTHORS,

The Equanimist...A peer reviewed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to **theequanimist@gmail.com**

Some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within three months. As a general rule, **The Equanimist** operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.5 or double), an

abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list,

and a word count on the front page (include all elements in the word count).

Regular articles are restricted to an absolute maximum of 10,000 words, including all elements (title

page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, **The Equanimist** publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation

(b) abstract

(c) main text

(d) list of references

(e) biographical statement(s)

(f) tables and figures in separate documents

(g) notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts. against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.5 or double.

The final manuscript should be submitted in MS Word for Windows.

4. Language

The Equanimist is a Bilingual Journal,i.e. English and हिंदी. The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.For UK spelling we use -ize [standardize, normalize] but -yse [analyse, paralyse]. For US spelling,-ize/-yze are the standard [civilize/analyze]. Note also that with US standard we use the serial comma (red, white, and blue). We encourage gender-neutral language wherever possible. Numbers higher than ten should be expressed as figures (e.g. five, eight, ten, but 21, 99, 100); the % sign is used rather than the word 'percent' (0.3%, 3%, 30%).Underlining (for italics) should be used sparingly. Commonly used non-English expressions, like ad hoc and raison d'être, should not be italicized.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200–300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article, rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be

written in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order to increase the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be fairly brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table.Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral, and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure.Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference

11. Biographical statement

The biosketch in **The Equanimist** appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proofs will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.

THE Equanimist
A peer reviewed journal

SUBSCRIPTION ORDER FORM

1. NAME……
   ……………
2. ADDRESS……
   ………
   ………
   ………
   ……………………………………………
   TEL…………………………………………….
   MOB……
   ….
   EMAIL…………………………………………………………………………………………………….
3. TYPE OF SUBSRIPTION: TICK ONE INDIVIDUAL/INSTITUTION
4. PERIOD OF SUBSCRIPTION: ANNUAL/FIVE YEARS
5. DD……………………………………………. DATE………………………………..
   BANK………………………………………………………………………………………….
   AMOUNT (IN WORD)……………………….AMOUNT (IN NUMBERS)……………………………….
   DEAR CHIEF EDITOR,
   KINDLY ACNOWLEDGE THE RECIPT OF MY SUBSCIPTION AND START SENDING THE ISSUE(S) AT FOLLOWING ADDRESS:
   ………
   ………
   ………
   ………
   THE SUBSRIPTION RATE ARE AS FOLLOWS W.E.F. 01.04.2015

INDIA(RS.)

TYPE	**INDIVIDUAL**	**INSTITUTION**
ANNUAL	RS.500	RS.800
FIVE YEARS	RS. 2400	RS. 3900

YOURS SINCERELY
SIGNATURE
NAME:
PLACE:
DATE:

Please Fill This Form And The Cash/Demand Draft/Multi City Check Drawn In Favor Of **Oriental Institute Of Human Development** Payable At **Allahabad** And Send It To Below Mentioned Address.

Published By

Oriental Institute Of Human Development
121/3B1 Mahaveerpuri, Shivkuti Road.
Allahabad-211004